# कैलास दर्शन



भण्डार, लहेरियासराय, पटना

# सुन्दर-साहित्य-माला

२१

सम्पादक

रामलोचनशरण बिहारी

[ 'बालक'-सम्पादक ]

सुन्दर-साहित्य-माला—२१

# कैलास-दर्शन

[ सचित्र ]

88/98

नभश्चरीमण्डनदर्पणश्री सुधानिधिर्मूर्द्धनि यस्य तिष्ठन् ।
अनर्घ्यचूडामणितामुपैति शैलाधिराजस्य शिवालयस्य ॥
—कालिदास

१८०५६/१५-८-५५

श्रीशिवनन्दनसहाय, बी० ए०
[भूतपूर्व डिप्टी-कलक्टर]

पुस्तक-भंडार
लहेरियासराय.. और पटना
१।)

प्रकाशक
पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
संवत् १९९१

मुद्रक
हनुमानप्रसाद
विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

स्नेहमयी कन्या

# स्वर्गीया तारादेवी

को

## सस्नेह समर्पित

# सोपान-शृंखला

# चित्रावली

[ यात्रा-वर्णन के साथवाले चित्र ]



[ आर्ट पेपर पर अलग छपे हुए चित्र ]

# कैलास-दर्शन



श्रीशिवनंन्दनसहाय, बी० ए०
[ लेखक ]



हिन्दी-संसार के सर्वप्रथम 'कैलास'-यात्री
स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
[ 'कैलास-यात्रा' नामक पुस्तक के लेखक ]

# लेखक का परिचय

इस पुस्तक के लेखक श्रीशिवनन्दनसहायजी का जन्म मुजफ्फरपुर जिले के 'घरहरवा' गाँव के एक सुप्रतिष्ठित श्रीवास्तव-कायस्थ-वंश में, सन् १८८४ ई० के नवम्बर में, हुआ था। दरभंगा-जिला-स्कूल ( नार्थब्रुक हाइस्कूल ) से एंट्रेन्स-परीक्षा पास करने के बाद आपका विवाह 'कोइली-नानपुर'-(मुजफ्फरपुर)-निवासी लाला आतमारामजी की पड़पोती के साथ हुआ। लाला आतमारामजी नैपाल-राज्य में एक ऊँचे ओहदे के अफसर थे—दरभंगा-राज्य और नैपाल-राज्य की सीमा निर्द्धारित करने के लिए वे सरपंच चुने गये थे; उनके सन्तोषजनक कार्य से प्रसन्न होकर उस समय के दरभंगा-नरेश ने उनको कई गाँव इनाम में दिये थे; उनके पड़पोता मुन्शी रामेश्वरप्रसादजी अँगरेजी राज्य में डिप्टी-मजिस्टर थे, जिन्होंने अपनी जीवन-भर की कमाई केवल शिक्षा-प्रचार में लगा दी थी।

इन्हीं मुन्शी रामेश्वरप्रसादजी की कन्या से श्रीशिवनन्दनसहायजी का विवाह हुआ था। मुन्शीजी की ही इच्छा से आप ( लेखक ) हजारीबाग में कालेज की उच्च शिक्षा प्राप्त करने गये। कालेज के छात्रों का दल संगठित करके आप प्रायः आसपास के जंगल-पहाड़ों में जाया करते थे। अन्त में कुछ दिनों के लिए आप भागलपुर चले आये और वहीं से सन् १९१० ई० में बी० ए० पास किया। कालेज में आप बड़े उत्साही, कर्मशील, साहसी और प्रतिभाशाली छात्र समझे जाते थे। जिस समय वर्त्तमान दरभंगा-नरेश ( महाराजाधिराज सर कामेश्वरसिंह बहादुर ) का शुभ जन्म हुआ था उस

समय, सन् १९०७ ई० में, इनके पिता स्वर्गीय मिथिलेश ( महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर ) को आपने अँगरेजी में कविता बनाकर बधाई दी थी, जिसपर महाराजाधिराज बहुत प्रसन्न हुए थे।

ग्रेजुएट होने के बाद आप दरभंगा-जिले के दुर्भिक्ष में अकाल-पीडितों की सहायता के लिए सरकारी अफसर नियुक्त हुए। उस समय चार्ज-सुपरिंटेंडेंट सी० बार्टली आइ० सी० एस० ने अपनी रिपोर्ट में आपकी सचाई और लगन की बड़ी प्रशंसा की थी। उसी समय मुजफ्फरपुर में एक दरबार हुआ था, जिसमें डिविजनल कमिश्नर ने आपको प्रशंसापत्र भी दिया था। इसके बाद आप डाकखाना, आबकारी, नमक, शिक्षा, अदालत दीवानी और फौजदारी आदि सरकारी विभागों में काम करते रहे।

पहले-पहल सन् १९११ में आप अदालत-दीवानी ( दरभंगा ) में हेडक्लर्क नियुक्त हुए। फिर एकाध साल के बाद ही इनकम-टैक्स के असेसर होकर राँची चले गये और वहाँ से बदलकर मुजफ्फरपुर आने पर तीन-चार साल के बाद ही सब-डिप्टी-कलक्टर हो गये। कुछ दिन मुजफ्फरपुर के महथा-कोर्ट-आफ-वार्ड्स-इस्टेट के मैनेजर रहकर आप सन् १९१७ ई० में छपरा ( सारन ) जिले के असिस्टेंट सर्वे-सेटलमेंट-अफसर नियुक्त हो गये।

जंगलों और पहाड़ों में भ्रमण करने के आप ऐसे अनुरागी थे कि सरकारी नौकरी में रहते हुए भी प्रायः जंगल-पहाड़ की सैर करने के लिए हरद्वार आदि तीर्थों की ओर निकल जाया करते थे। सन् १९२० में आपने यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, बुद्ध केदार, तुङ्गनाथ, केदारनाथ और बदरीनाथ की यात्रा की थी। आप प्रायः यात्रा का मुख्य मार्ग छोड़कर घने जंगलों और बीहड़ पहाड़ों में बहुत दूर-दूर तक चले जाते थे। इस प्रकार आप जंगली

और पहाड़ी जातियों में प्रचलित कुप्रथाओं का सुधार किया करते थे। उस तरफ के जंगली और पहाड़ी लोगों से आपका मेलजोल यहाँ तक बढ़ गया है कि आज तक वे लोग हर साल आपके पास आते और उधर चलकर समाज-सुधार करने का निमंत्रण देते हैं।

बदरी-केदार-यात्रा पर भी आपने एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है, जो उधर के तीर्थ-यात्रियों के बड़े काम की है; पर अभी वह प्रकाशित नहीं हुई है। यदि इस पुस्तक को हिन्दी-प्रेमी पाठकों ने पसन्द किया और अपनाया, तो 'बदरी-केदार-यात्रा' भी उनकी सेवा में उपस्थित की जायगी।

श्रीशिवनन्दनसहायजी के पूर्वज आजमगढ़ जिले के 'चिरैयाकोट' नामक स्थान से बिहार में आये थे। उनकी उपाधि 'पांडेय' और 'राय' थी। वे मांस, मछली, शराब, तम्बाकू आदि नहीं खाते-पीते थे। मुसलमानी शासन-काल में वे पहले-पहल छपरा ( सारन ) जिले के 'शीतलपुर-बरेजा' नामक गाँव में आये। वहाँ से फिर तिरहुत में आये। मुसलमान शासकों से उन्हें तीस गाँवों की जागीर मिली थी, जिनमें से एक 'धरहरवा' गाँव भी है। वे क्रमशः मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले में फैल गये। दरभंगा जिले के 'सिमरा' गाँव में उन्हीं के वंश की एक सतीदेवी का स्थान है, जिसकी पूजा-प्रतिष्ठा के लिए आज तक लोगों की भीड़ हुआ करती है और 'सिमरा' गाँव भी अबतक धरहरवा-निवासी कायस्थों के कब्जे में है।

श्रीशिवनन्दनसहायजी के सुयोग्य सुपुत्र श्रीभगवतीप्रसादसिंह, बी० ए०, बी० एल्० आजकल दरभंगा-दीवानी में वकालत करते हैं।

---

पुस्तक-भंडार द्वारा प्रकाशित

## एकतारा

श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी'
की कविताओं का संग्रह। सजिल्द १)

## अशोक

पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०-लिखित
ओजपूर्ण ऐतिहासिक नाटक। सजिल्द १।)

# भूमिका

**गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।**
**स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाःसुरत्वात् ॥***

**—विष्णुपुराण**

हिन्दुओं के तीर्थों में 'कैलास' और 'मानस-सरोवर' सबसे अधिक रमणीय, पवित्र, आकर्षक और दर्शनीय हैं; साथ ही दुर्गम भी हैं। वे तीर्थयात्री दर्शकों के हृदय-पट को खोलनेवाले हैं—मोक्ष-मार्ग के प्रदर्शक हैं—लोकोत्तरानन्द-दायक हैं—तपस्या और साधन के उर्वर क्षेत्र तथा सांसारिक माया-मोह से जर्जरीभूत आत्मा को नवजीवन प्रदान करनेवाले हैं। इतना ही क्यों, वे हिन्दू-सभ्यता और हिन्दू-संस्कृति के मूल स्रोत भी हैं। मानव-जन्म धारण कर जिसने 'कैलास' और 'मानस-सरोवर' के दर्शन नहीं किये—उनके नैसर्गिक सौन्दर्य से अपने चर्म-चक्षुओं को तृप्त नहीं किया—उनके दिव्य दर्शन से उत्पन्न अनिर्वचनीय सुख का रसास्वादन नहीं किया, वह मानव-जीवन के एक अलौकिक आनन्द से वञ्चित रह गया।

चिरकाल से मेरे मन में 'कैलास'-दर्शन की उत्कट लालसा थी। सुनता था, वहाँ कोई नर-तन-धारी पहुँच ही नहीं सकता! जब मैं उसके विषय में पूछताछ और खोज-ढूँढ़ करने लगा तब पता चला कि वहाँ पहुँचना असम्भव

*** देवता भी ऐसे गीत गाया करते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो स्वर्ग और अपवर्ग के मूलभूत भारतवर्ष में जन्म लेते हैं—वे हमसे भी श्रेष्ठ हैं।**

तो नहीं है; पर दुस्साध्य अवश्य है; फिर भी अटल साहस और अटूट धीरज वाला कष्टसहिष्णु एवं श्रद्धालु व्यक्ति वहाँ निश्चय पहुँच सकता है।

मैं बहुत दिनों तक मन-ही-मन में संकल्प करता रहा। बदरी-केदार-यात्रा से लौटने पर कैलास-दर्शन की अभिलाषा और भी तीव्र हो उठी। अपने कई मित्रों से भी मैंने चर्चा की; उनलोगों ने भी मुझे उत्साहित किया। इसी बीच में स्वामी सत्यदेवजी की 'कैलास-यात्रा' नामक पुस्तक मिल गई। मेरा उत्साह चौगुना बढ़ गया। मैं ईश्वर के भरोसे चल पड़ा। घरवालों से कुछ कहने का साहस न हुआ; क्योंकि चित्त की दुबिधा अच्छी तरह मिटी न थी—अपने सौभाग्य पर सन्देह बना ही था। किन्तु लगन सच्ची थी—संकल्प पक्का था; इसलिए किसी प्रकार का असमंजस अथवा सन्देह विघ्न-कारक न हुआ। देवोपम पर्वतराज हिमालय के चरणों में पहुँचकर मैंने घर-वालों को सूँचना दे दी। परन्तु मन में यह दृढ निश्चय था कि अब किसी के आग्रह-अनुरोध से भी कैलास तक पहुँचे विना घर न लौटूँगा। कैलासपति की कृपा से मनोरथ पूर्ण हुआ।

प्रिय पाठको! मैं कैलास की दिव्य छटा का क्या वर्णन करूँ! वहाँ के दृश्य सर्वथा अवर्णनीय हैं—केवल दर्शनीय ही हैं। जो देख चुका है, वह लिख या कहकर बतला नहीं सकता। फोटो और चित्र में वह अपार शोभा समा नहीं सकती। किसी चित्रकार की तूलिका उस दृश्य को उरेह नहीं सकती। कोई कवि भी उस स्वर्गीय सौन्दर्य का साक्षात्कार नहीं करा सकता। अद्‌भुत छवि है कैलास की—निराली छटा है मानस-सरोवर की!

× × × ×

मैं न हिन्दी का लेखक हूँ और न कवि। हाँ, हिन्दी-प्रेमी अवश्य हूँ।

उसी नाते से मैंने अपनी यात्रा की दिनचर्या तैयार की थी। सोचा था, इसे पुस्तक-रूप में लेखबद्ध करके हिन्दीप्रेमी भाइयों की सेवा में उपस्थित करूँगा। जब यह पुस्तक डायरी के रूप में थी, तभी 'बालक' के आदि-सम्पादक 'श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी' ने इसे पुस्तक के रूप में परिणत करने के लिए मुझे बहुत उत्साहित किया था। अपने सम्पादन-काल में उन्होंने इसका कुछ अंश 'बालक' में प्रकाशित भी किया था। पर उसके बाद यह पुस्तक काल-चक्र के फेर में पड़ी रह गई।

आज यह पुस्तक जिस रूप में पाठकों के सामने उपस्थित हुई है वह रूप मेरी कल्पना में भी न था। इसका श्रेय लहेरियासराय के भारत-प्रसिद्ध प्रकाशक—'पुस्तक-भंडार' के सुयोग्य संचालक—को है। मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि यह पुस्तक इतने अच्छे रूप-रंग में प्रकाशित होगी। इस पुस्तक का परम सौभाग्य है कि इसे एक समर्थ प्रकाशक का आश्रय प्राप्त हुआ। मुझे अपने लेखन-कौशल या वर्णन-चातुरी का भरोसा नहीं है। मेरे नाम या योग्यता में भी कोई विलक्षण आकर्षण नहीं। हाँ, कैलास के नाम में आकर्षण अवश्य है। आशा है कि सर्व-साधन-सम्पन्न प्रकाशक ही के उद्योग से, तथा कैलास-मानस के विश्वव्यापी यश के प्रताप से, हिन्दी-जगत् में इस पुस्तक का बहुल प्रचार होगा।

× × × ×

मेरी लेखनी उन सज्जनों को आन्तरिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रुकती, जिनके द्वारा मुझे इस पुस्तक के रचने में सहायता मिली है। इस सम्बन्ध में पंडित शान्तिप्रिय द्विवेदी और श्रीशिवपूजनसहाय का नामोल्लेख करते मुझे बड़ा हर्ष होता है। अन्त में उन प्रेमी बन्धुओं को भी कोटिशः साधुवाद

देता हूँ, जिनकी सहानुभूतिपूर्ण सहायता से मैं हिमालय के अतिशय विकट मार्ग को पार कर कैलास-मानस-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सका—इन सब स्नेहशील बन्धुओं का नामोल्लेख पुस्तक-गत यात्रा-वर्णन-प्रसंग में हो चुका है। किन्तु जिस परमेश्वर की असीम दया से मेरी कैलास-यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई उसे कोरा धन्यवाद देकर उऋण होना असम्भव है; क्योंकि उसके उपकारों की कोई इति नहीं है।

× × × ×

इस पुस्तक में उस कैलास-मन्दिर का भी चित्र दिया गया है, जो हिमालय पर कैलास-पर्वत-श्रेणी के पद-प्रान्त में स्थित है। यह कैलास-मन्दिर बहुत ही सुन्दर बना है। इसके सिवा दक्षिण-भारत में भी एक कैलास-मन्दिर, 'इलोरा' नामक स्थान में, है जिसकी बनावट बड़ी भव्य और शिल्पकला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की है। 'कल्याण' के शिवांक में, पृष्ठ ५५६ पर, लिखा है—"दौलताबाद ( दक्षिण हैदराबाद ) में पहाड़ की चोटी पर एक किला है। वहाँ से कुछ ही दूर आगे 'इलोरा' की प्रसिद्ध गुहाएँ दर्शनीय हैं। इलोरा में 'कैलास' नामक गुहा सबसे श्रेष्ठ और सुन्दर है, पहाड़ काटकर बनाई हुई है। कारीगरी की दृष्टि से गुहा बहुत सुन्दर है। यह न केवल हिन्दुओं का ही ध्यान अपनी ओर खींचती है, बल्कि अन्य-धर्मावलम्बी एवं अन्य-देशवासी सज्जन भी इसकी अद्भुत रचना को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। एक 'श्यावेल' नामक पाश्चात्य सज्जन तो दक्षिण-भारत के सभी मन्दिरों को इस 'कैलास' के नमूने पर बना हुआ बतलाते हैं। कुछ लोग 'इलोरा' के कैलास-मन्दिर को ही अन्तिम द्वादश-ज्योतिर्लिङ्ग 'घुश्मेश्वर' का असली स्थान मानते हैं।"

# कैलास-दर्शन

## प्रथम सोपान

### यात्रा की प्रेरणा

आज से लगभग बारह वर्ष पहले की बात है, जब मैं कैलास के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सका था; और उसी दिन से इच्छा थी कि कैलास की अपनी उस विकट यात्रा का वर्णन, अपनी टूटी-फूटी भाषा में, हिन्दी-संसार के सम्मुख रक्खूँ। आज अपनी उस पवित्र, किन्तु दुस्साध्य, यात्रा का वर्णन प्रारम्भ करते मुझे विशेष आनन्द हो रहा है। यदि इस यात्रा का वर्णन पढ़कर पाठकों में से एक के हृदय में भी कठिन-से-कठिन काम को धैर्य और लगन से करने का साहस उत्पन्न हुआ, तो मैं अपने इस लिखने के परिश्रम को सफल समझूँगा।

यात्रा का परिश्रम तो उसी दिन, मेरी समझ में, सफल हो गया; जब मैं अपनी इन आँखों से भगवान महादेव की पवित्र कैलासपुरी के दर्शन कर सका, संसार-प्रसिद्ध मानस-सरोवर की तरंगों का मजा लूट सका, और सुन सका उसमें विचरने-वाले उजले-उजले अलमस्त राजहंसों के पवित्र स्वर्गीय संदेश।

हम लोग अपने धर्म-ग्रंथों में कैलास का जिक्र प्रायः पाते हैं—वह हमसे सुदूर उत्तर में है, वहाँ शिव-पार्वती निवास करते हैं, कैलास के निकट ही मानस-सरोवर है—जिसमें पानी के स्थान में दूध है, वहाँ राजहंस मोती-मूँगा चुगते हैं आदि-आदि।

बचपन से ही मैं इन बातों को सुना करता था। मानस-सरोवर की चर्चा तुलसी-कृत रामायण में पढ़कर तबीयत खुश हो जाती थी—ओहो! अगर मैं वहाँ पहुँच पाता, तो मुफ्त का दूध खूब छककर पीता! किन्तु उसी रामायण में मानस-सरोवर के पथ की कठिनाइयाँ भी पढ़ता, तो हौसले पस्त हो जाते। बूढ़े लोग फटकारकर कहते—वह सब 'सतजुग' की बात है, न वह कैलास रह गया है, न मानस-सरोवर; वे लुप्त हो गये! मनुष्य उनके दर्शन पा नहीं सकता!!

बचपन बीता, बड़े हुए, बी० ए० बने, 'डिप्टी'-साहब कहलाने लगे। बचपन की बातें भूल गईं। किन्तु ईश्वर की कृपा से जब डिप्टीगिरी से छुटकारा मिला—वही पुराना भाव हृदय में हिलोरें लेने लगा।

इधर दुनिया के ज्ञान ने बतला दिया था कि कैलास कोई कल्पित स्थान नहीं—मानस-सरोवर अब भी वर्त्तमान है। तो चलकर दर्शन क्यों न करूँ? शिवजी के उस पावन मन्दिर के दर्शन कर, पवित्र मानस-सरोवर में गोते लगा, अपनी मलिन आत्मा का मैल क्यों न धो लूँ? किन्तु कैलास की विकट राह की याद आते ही होश गुम हो जाते। ओहो! हिमालय की दुर्गम घाटियों

को पार करना होगा, रास्ते में कितने पहाड़ी नदी-नाले मिलेंगे—जहाँ न डोंगी है, न मल्लाह। फिर 'लामाओं के देश' तिब्बत से गुजरना होगा—न मैं वहाँ की भाषा जानता हूँ, न रीति-नीति। कैसे क्या होगा—कुछ समझ में नहीं आता था।

अपने मित्रों में भी मैंने अपनी भावी कैलास-यात्रा की बात चलाई। उनमें से कुछ ने मेरे इस घोर साहस का अभिनन्दन किया; किन्तु अधिकांश डराते ही रहे। पर हृदय में जो उत्कंठा की आग जल रही थी, वह शांत न हो सकी—और भी धधकती चली गई। एक दिन तो मरना है ही; तो फिर क्यों न भगवान भूतनाथ शंकर की शरण में जाकर, या जाते हुए, प्राण-विसर्जन किया जाय? इतने ही में प्रसिद्ध साहसी परिव्राजक स्वामी सत्यदेवजी की 'मेरी कैलास-यात्रा' नामक पुस्तक अकस्मात् मिल गई—'सूखत धान परा जनु पानी'! मेरा जाना निश्चित हो गया।

संवत् १९७९ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया ( २८ मई १९२२ ) को मुझे कैलास-यात्रा के लिए विशेष रूप से उत्तेजना मिली, और उसी दिन मैं अपने ग्राम 'धरहरवा' से कैलास-यात्रा के लिए रवाना हो गया। पाठकों को स्वभावतः यह उत्कंठा होगी कि मेरा ग्राम 'धरहरवा' भारत के किस कोने में है। बिहार-प्रांत के तिरहुत-मंडल में मुजफ्फरपुर एक जिला है—इसी जिले में यह ग्राम है। 'बालक' के आदि-सम्पादक श्रीबेनीपुरीजी के घर 'बेनीपुर' से मेरा गाँव सटा हुआ है।

हाँ, तो 'धरहरवा' से मैं सीधे काठगुदाम (नैपाल-राज्य) आया। वहाँ से अल्मोड़ा के आगे पहाड़ी प्रान्तों में पहुँच जाने पर देशबन्धु भोटियों से मैंने परिचय कर लिया, और



[ हिमालय के पहाड़ी फूल ]

इन्हीं की सहायता से कैलास के दर्शनकर तीसरी सितम्बर (१९२२) को घर लौटा। यात्रा का पूरा वर्णन आगे पढ़िये।

जो दृश्य मुझे कैलास जाते समय पहाड़ी प्रान्तों में देख पड़े, उनका चित्रण तो कोई चतुर चितेरा या सच्चा कवि ही कर सकेगा; किन्तु इतना लिखना अनावश्यक न होगा कि वहाँ का प्रत्येक दृश्य, अपने निरालेपन में, ईश्वरीय सत्ता का बोध करा रहा था; तथा हृदय के संकीर्ण विचारों को विस्तृत बनाकर आत्मा को वैराग्य का सुन्दर उपदेश देता था। वह रंग-बिरंगे पहाड़ी फूल—जो प्रकृति की गोद में आप ही खिलते और झड़ते हैं, जिन्हें मनुष्य का मलिन हाथ अपवित्र नहीं बना सकता; वह झर-झर करनेवाले प्राकृतिक झरने, जो अपने निर्मल जल से दर्पण का दर्प भी चूर करते हैं; वह ऊँची-ऊँची चोटियाँ, जो गम्भीर भाव से खड़ी अपनी अचलता से योगियों के हृदय को भी मात कर रही हैं—क्या कभी भूल सकती हैं! कैलास के सुनसान पहाड़ी प्रान्त में यही भाव बार-बार उठता कि यहीं क्यों न परमात्मा के चिन्तन में—मलिन आत्मा की कालिमा को स्वच्छ करने में—जीवन बिताऊँ? अहा! वह दिन भी क्या था, जब जगत्-पूज्य मानस-सरोवर के रमणीय तट पर हृदय में संसार की निस्सारता पर तरह-तरह के भाव हिलोरें ले रहे थे, और चित्त थोड़ी देर के लिए संसार के बाहरी आडम्बरों से मुक्त होकर जीवनोद्देश्य की वास्तविक ज्योति से प्रकाशित हो रहा था। कैलास क्या है? संसार के भूले-भटकों को जीवन का सुचारु पथ ढूँढ़ने के लिए विचार-बल प्रदान करनेवाला एक अमर प्रदीप!

इधर पर्वत के दरों में प्राकृतिक छटा भी क्या खूब थी ! मानों स्वयं प्रकृति दिव्य रूप धारण कर निर्जन स्थान में स्वच्छन्दता से नृत्य कर रही हो ! हम लोग चिर-काल से बनावटी जीवन व्यतीत करते चले आ रहे हैं—इसी लिए हमारे हृदय के विचार कृत्रिम, हमारे कार्य कृत्रिम, तथा हमारा स्वास्थ्य कृत्रिम होता है। सर्वत्र कृत्रिमता फैली हुई है। यह क्यों ? क्योंकि हमने प्रकृति के रहस्यों को नहीं समझा है, अपने रहन-सहन की सम्पूर्ण बातों को अप्राकृतिक ढंग का जामा पहना दिया है। जो कार्य प्रकृति द्वारा पूरा होना चाहिये था, उसे मनुष्य स्वयं अप्राकृतिक ढंग से पूर्ण कर रहा है।

पहाड़ी प्रान्तों में जाकर मनुष्य को एक स्वर्गीय सुख का आभास होता है। वहाँ चारों तरफ प्रकृति के आधिपत्य का सुन्दर आनन्द अनुभूत होता है। कैलास और मानस-सरोवर अपने प्रेमियों को प्रसाद-रूप में अपरिमित प्राकृतिक सुख प्रदान करते हैं। जिसने कैलास-यात्रा नहीं की, जिसने मानस-सरोवर के दर्शन नहीं किये, उसने, मेरी समझ में, अपनी जिन्दगी में ही 'स्वर्ग-पुरी' के दिव्य दर्शन से अपने को वंचित रक्खा।

किन्तु पृथ्वी पर स्थित इस स्वर्गपुरी ( कैलास ) तक पहुँचने के लिए बड़ी तपस्या की आवश्यकता है। मार्ग भीषण है ! कहीं चट्टानें मार्ग रोके खड़ी हैं, तो कहीं बर्फों के ढेर जिन्दा गाड़ देने के लिए आह्वान कर रहे हैं; यदि कहीं पहाड़ी नाले भयानक रूप धारण किये हुए अत्यन्त तीव्र प्रवाह से बह रहे

हैं, तो कहीं मार्ग इतना संकीर्ण हो गया है कि आगे बढ़ना कठिन हो जाता है—मुँह से त्राहि-त्राहि निकलती है! स्थान-स्थान पर भोजन का अभाव है; डाकुओं का सामना है। इसलिए मेरा कहना है कि कैलास-यात्रा के वही पात्र हो सकते हैं, जो शरीर से हट्टे-कट्टे हों, भूख-प्यास सह सकते हों, आपत्तियों से घबरानेवाले न हों। इन बातों के अतिरिक्त सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि यात्री के मन में कैलास-दर्शन की उत्कट अभिलाषा हो—हृदय में अगाध प्रेम हो। जब हृदय में कैलास-दर्शन की उत्कट अभिलाषा होगी, तब मार्ग की कठिनाइयों के सहने में भी आनन्द मिलेगा, और आपत्तियों के पहाड़ बड़ी आसानी से पार किये जा सकेंगे। यदि मन ऊँचा और साहसी हो, तो कैलास-दर्शन में कोई कठिनाई नहीं, कोई भयंकरता नहीं।

× × × ×

## घर से 'अल्मोड़ा' तक

यों तो मेरी कैलास-यात्रा १७ ज्येष्ठ संवत् १९७९ (२८ मई १९२२) को ही आरम्भ हुई; पर मैं अपने पाठकों को (मुजफ्फरपुर से) 'काठगुदाम'-स्टेशन पहुँचने तक का—जहाँ मैं १ जून (सन् १९२२ ई०, गुरुवार) को पहुँचा—हाल न सुनाकर, 'काठगुदाम' ही से अपनी यात्रा का वर्णन आरम्भ करता हूँ। काठगुदाम में ही रेल (बी० एन० डब्ल्यू० लाइन) खतम होती है और बीहड़ पहाड़ी रास्ता शुरू होता है।

'काठगुदाम' पहाड़ों के बीच में बसा हुआ है। जिधर नजर दौड़ाइये, पहाड़-ही-पहाड़ दीख पड़ते हैं। उन पहाड़ों में जगह-जगह शीतल-निर्मल जल के सुन्दर झरने झर-झर करके बहते हुए बड़े सुहावने नजर आते हैं। वे झरने वहाँ के रहने-वालों के लिए बड़े काम के हैं। काठगुदाम और उसके आगे कुएँ का जल नहीं मिलता, उन झरनों का मधुर जल ही लोग काम में लाते हैं। काठगुदाम से नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत आदि स्थानों को राहें गई हुई हैं। यहाँ 'गोला'-नदी का पुल देखने ही योग्य है। यह पत्थर का बना है। इसमें पाये नहीं हैं—अधर में लटका हुआ है! ऐसा ही एक पुल 'बदरीनारायण' के रास्ते में है, जो 'लक्ष्मण-झूला' नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु उसमें लकड़ी के तख्ते लगे हैं और इसमें पत्थर के! केवल इतना ही अंतर है।

शुक्रवार ( २ जून ) को बहुत सवेरे ही मोटरों और मोटर-लारियों की घरघराहट और 'पों-पाँ' से मेरी नींद उचट गई। वे गाड़ियाँ ऊपर-लिखे स्थानों को कूच करने के लिए तैयार खड़ी थीं—घंटों पहले से इनके अड्डों पर यात्री लोग एकत्र होने लग गये थे। मैंने भी गठरी-मोटरी सँभाली, और अड्डे पर जा पहुँचा। यहाँ मैं काठगुदाम से ऊपर-लिखे स्थानों की दूरी और मोटर-भाड़ा बतला देना चाहता हूँ—

| स्थान | मोटर से | पैदल | मोटर-भाड़ा | लारी-भाड़ा |
|---|---|---|---|---|
| अल्मोड़ा | ८० मील | ३७ मील | २०)—२५) | १०) |

| स्थान | मोटर से | पैदल | मोटर-भाड़ा | लारी-भाड़ा |
|---|---|---|---|---|
| नैनीताल | २२ मील | ११ मील | ५) | २) |
| रानीखेत | ५१ „ | ... | १०)—१५) | ७) |

इसके सिवा फी आदमी २) चुंगी लगती है। पहले मेरी इच्छा पैदल ही अलमोड़ा जाने की थी; पर भाई धन्नासिंह के आग्रह से—जिनसे रास्ते में मित्रता हो गई—मुझे नैनीताल जाना पड़ा। नैनीताल जानेवाले अधिकांश यात्री अलमोड़ा जानेवाली मोटर पर ही सवार होते हैं, और अलमोड़ा से १३ मील की दूरी पर—'बीरभठी' नामक स्थान में—उतर जाते हैं, और वहाँ से तीन मील पैदल चलकर नैनीताल पहुँच जाते हैं। यहाँ तक का किराया सिर्फ १॥) लगता है।

'बीरभठी' में कुली बहुतायत से मिलते हैं। वे चार-छः आने में भारी-से-भारी गठरी नैनीताल पहुँचा देते हैं। इसलिए यात्रियों को कोई कठिनाई नहीं पड़ती। यहाँ सवारी के लिए भाड़े के घोड़े भी मिलते हैं। इनका किराया नैनीताल के लिए १॥) और अलमोड़ा के लिए १०) है। पर मैं तो पैदल ही चल पड़ा, और दिन में—लगभग १२ बजे—नैनीताल पहुँच गया।

नैनीताल भी बड़ा ही सुन्दर स्थान है। शायद ही कोई पहाड़ी शहर इसके समान साफ़-सुथरा हो। यहाँ अवध-सूबे के लाट और अन्य धनी लोग गर्मियों में निवास करते हैं। यह नगर एक बहुत बड़ी झील के किनारे-किनारे बसा हुआ है। झील की लम्बाई प्रायः एक मील होगी। दिन को बड़े-बड़े लोग

इनमें नावों पर बैठकर सैर करते हैं। और, जब सूर्य-देव संध्या-देवी के धुमिल आँचल में अपना चमकीला मुखड़ा छिपा लेते हैं, तब लोग झील के चारों ओर बनी हुई रमणीय पगडंडियों पर टहल-टहलकर ठंडी-ठंडी हवा खाते हैं। इसके एक किनारे 'नैना'-देवी का मंदिर है। शायद इसी लिए इस शहर का नाम 'नैनीताल' पड़ा है। जो हो, यह शहर दरिद्रों के रहने योग्य नहीं है। यहाँ इतने धनी-मानी लोगों का पड़ाव पड़ा रहता है कि सभी जरूरी चीजें महँगी बिकती हैं।

शनिवार ( ३ जून ) को मैं 'सिपाही-धारा' में स्नान करने गया। जेल के पास एक पँचनली से शीतल जल की स्वच्छ धाराएँ बड़े वेग से निकलती हैं—यही 'सिपाही-धारा' है। इसमें नहाने में बड़ा आनन्द आता है!

भोजन आदि से छुट्टी पाकर मैं दोपहर को पैदल ही अल्मोड़ा की ओर चल पड़ा, जो ३१ मील की दूरी पर है! मैंने पहले ही से ३) में एक कुली ठीक कर लिया था। यद्यपि यहाँ से मोटर भी जाती है, पर उसमें जगह पाना आसान नहीं है—अलावा इसके, भाड़ा भी २०)—२५) से कम नहीं है!

नैनीताल से एक मील की ऊँची चढ़ाई के बाद सात मील का करारा उतार मिला। आठवें मील पर 'रनिघाट' नामक स्थान मिला। नैनीताल के बाद अगर कोई ठहरने लायक जगह है तो यही है। यों तो नैनीताल से पाँच मील पर 'चोरसाचट्टी' और साढ़े छः मील पर 'धुनवालटी-चट्टी' मिलती है; पर इनमें एक

भी ठहरने योग्य स्थान नहीं है। 'रनिघाट' से 'खैरना' तक—जो तीन मील की दूरी पर है—यात्रियों को मोटर की सड़क पर ही चलना पड़ता है। यह सड़क काफी चौड़ी है—इस पर बैल-गाड़ी भी चलती है। 'खैरना' में एक सरकारी 'बँगला' है, जिसमें दो आना भाड़ा देकर चाहे जो ठहर सकता है! मैं वहीं ठहर गया। आज दोपहर से शाम तक साढ़े ग्यारह मील चलकर विश्राम पाया!

दूसरे दिन, रविवार (४ जून) को, सवेरे 'खैरना' से चला। रास्ते में 'कोश' नामक नदी मिलती है। उसके दाहिनी ओर होकर ऊपर को जाना पड़ता है। 'खैरना' से करीब साढ़े छः मील की दूरी पर, कोश-नदी के दूसरे किनारे, एक शिव-मंदिर है। यहाँ लोग मुर्दे जलाया करते हैं। फिर, कुछ ही दूर आगे, 'काकरी-घाट' नामक चट्टी है; पर मैं 'करत्यागा' नामक चट्टी पर चला गया; और वहाँ स्नान-भोजन आदि से निबटकर आराम किया। यहाँ से अलमोड़ा १० मील दूर है। मैं दिन की ऊपरी वेला में १ बजे चल पड़ा। डेढ़ मील जाने पर 'चोपेड़ा'-चट्टी मिली। यहाँ से तीन मील दूर 'धुरारी'-पुल है, जहाँ काठगुदाम और नैनीताल की सड़कें मिल जाती हैं। यहीं एक 'साइन-बोर्ड' पर कुछ जगहों की दूरी—मीलों में—दी हुई है। हाँ, धुरारी से डेढ़-दो मील की कड़ी चढ़ाई के बाद मैं करीब पाँच बजे अलमोड़ा पहुँच गया।

अल्मोड़ा पहुँचने पर मैं 'श्रीहरि टमटा' से मिला। यह महाशय वहाँ के व्यापारियों में बड़े नामी पुरुष हैं—सोना, चाँदी, कपड़ा, बर्तन आदि के अच्छे व्यापारी हैं। इनका व्यापार 'भोट' देश तक फैला हुआ है। मैं इनसे इसलिए मिला कि भोटिया व्यापारियों से मेरा परिचय करा देंगे, जिससे मुझे यात्रा में सुविधा होगी। इन्होंने मुझे अपनी 'भैरो-भवन' नामक कोठी में सादर ठहराया।

सोमवार (५ जून) को सबेरे नहा-धोकर मैं श्रीहरिराम पांडेय, बी० ए०, एल्-एल्० बी० से मिलने गया। आप अब वकालत नहीं करते—काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में हिन्दू-धर्म के 'आनरेरी' (अवैतनिक) प्रोफेसर हैं। यद्यपि आप 'कैलास' नहीं गये हैं, तथापि आपने अपने भतीजे 'पंडित लक्ष्मीदत्तजी' से मेरा परिचय करा दिया, और दूसरे-दूसरे वकीलों से मेरी यात्रा में सहायता दिलवाने का वचन दिया—साथ ही, 'अस्कोट' के राजा-साहब को भी पत्र लिख दिया कि इन्हें (मुझे) आवश्यकता के अनुसार सहायता दी जाय।

दस बजे मैं पंडित लक्ष्मीदत्तजी के साथ कचहरी गया। शाम को प्रतापगढ़-जिले के रहनेवाले बाबू श्रीराम वकील से परिचय हुआ। उन्होंने कहा—मेरे ससुर मुन्शी ब्रजबासीलाल (असिस्टेंट-स्कूल-इन्स्पेक्टर) ने कैलास-यात्रा की है; वे आपकी (मेरी) कुछ सहायता कर सकेंगे। फिर, उन्होंने मेरे साथ जाकर मुन्शीजी से परिचय कराया। सचमुच आप बड़े सज्जन पुरुष

हैं—यद्यपि मोटी तनखाह पानेवाले एक ऊँचे ओहदे के बड़े अफसर हैं, तथापि बड़े ही नम्र और मिलनसार हैं—घमंड तो मानों छू तक नहीं गया है। आपने कैलास-यात्रा के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें बताईं, और अपने ही यहाँ ठहरने का बड़ा आग्रह किया; पर मैं ऐसी कृपा के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देकर—दूसरे दिन सेवा में उपस्थित होने का वचन दे—अपने डेरे पर लौट आया।

फिर, दूसरे दिन, मंगलवार ( ६ जून ) को, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, मैं नव बजे मुन्शीजी के मकान पर गया। उन्होंने अपने अधीनस्थ स्कूल-इन्स्पेक्टर और डिपुटी-इन्स्पेक्टर को बुलाकर कहा कि धारचूला, अस्कोट, गर्बयांग आदि स्थानों के पंडितों के नाम पत्र लिखकर इन्हें ( मुझे ) दे दें, ताकि वे इन्हें यात्रा में सब प्रकार की सहायता दें।

ग्यारह बजे के करीब मैं डिपुटी-कमिश्नर के आफिस में 'पासपोर्ट' ( यात्रा का आज्ञापत्र ) लेने के लिए गया। वहाँ मालूम हुआ कि भारत की उत्तरी और पश्चिमी सीमा पार करने के लिए यद्यपि सरकारी 'पास' लेने का कानून है; तथापि लोग 'पास' की कोई परवा नहीं करते। हाँ, अँगरेजों को यह नियम अवश्य मानना पड़ता है, चाहे वे सरकारी अफसर हों या और कोई। 'जोहार'[१] की राह से 'मीलम' के आगे और 'व्यास-चौंदास' की राह से 'धारचूला' के आगे कोई अँगरेज नहीं जा सकता। परन्तु, 'पास' लेने पर भी किसी व्यक्ति के

लिए—भोटियों की सहायता के विना—'तिब्बत' जाना अत्यंत कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।

संयोग-वश, शाम को, 'टमटा' जी की दूकान पर 'टस्सी' नामक एक 'गर्बेयाली' ( गर्बेयांग-निवासी ) से भेंट हो गई। वह किसी जरूरी काम से आया था। टमटाजी ने उससे मुझे 'गर्बेयांग' तक ले जाने के लिए कहा। १०) मजदूरी पर वह मेरा असबाब 'गर्बेयांग' तक ले जाने को राजी हुआ। मैंने इसे परमेश्वर की बड़ी दया समझी; उसे अनेक धन्यवाद दिये। ऐसे बीहड़ रास्ते के लिए इतनी कम मजूरी पर कुली मिल जाना कम सौभाग्य की बात नहीं है। रास्ता भी ऐसा-वैसा नहीं—एक तो बीहड़, दूसरे १४१ मील !

बुधवार ( ७ जून ) की शाम को 'सामाजिक पुस्तकालय' में उसके अध्यक्ष रायबहादुर पंडित धर्मानन्दजी से भेंट हुई। वे पहले 'सेटलमेंट'-अफसर थे। इन दिनों 'पेन्शन' लेकर 'ऑनररी-मजिस्ट्रेटी' कर रहे हैं। यद्यपि वे 'कैलास' नहीं गये, तथापि अफसरी के दौरे में 'नीती' तक गये हुए हैं। उनसे बहुत-सी उपयोगी बातें मालूम हुईं। उन्होंने बताया कि 'बलवाकोट' के आगे सिर में चक्कर-सा आने लगता है—जान पड़ता है, सिर फट गया—रात में नींद नहीं आती—भूख नहीं लगती—बेचैनी रहती है। पर डरने की कोई बात नहीं। सर्द जगह समझकर गर्म चीज नहीं खानी चाहिये। हाँ, तरल पदार्थ—जैसे, चाय और पानी मिला हुआ सत्तू—खाना लाभदायक है !

इन हितकर बातों के सिवा उन्होंने अपने मित्र—राजवाड़ा-साहब, अस्कोट—के नाम का एक पत्र दिया, और सफलता के साथ निर्विघ्न यात्रा समाप्त करने का आशीर्वाद भी।

गुरुवार ( ८ जून ) को सारा दिन मैं यात्रा की सुविधा के लिए जरूरी चीजें खरीदने में ही लगा रहा। रास्ते में किसी चीज के मिलने की आशा नहीं—बिल्कुल सुनसान जंगली-पहाड़ी रास्ता ! कहीं कोई आबादी नहीं, बस्ती का नाम नहीं, मनुष्य की परिछाईं तक नहीं ! फिर नाई-धोबी कहाँ मिलेंगे ? इसलिए उस्तरा और साबुन तो चाहिये ही। और, इनके सिवा, भोजन के पिसे हुए मसाले लिये। बादाम, मिसरी, नारियल की गरी, किसमिस, छुहारे, अमचुर, नीबू का चुक ( रस ) आदि बहुत-सी चीजें बाजार से खरीदीं। हर-एक पहाड़ी यात्री के पास खटाई और चुक ( रस ) का होना बहुत जरूरी है। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ते समय सिर में चक्कर आने लगता है। भारत की सीमा को पार करते समय भी बड़ी बेचैनी होती है। लोग मतवाले की तरह झूमने लगते हैं। कितने तो अचेत होकर गिर पड़ते हैं। उस समय खटाई और मिसरी अमृत का काम देती हैं—इन्हें मुँह में डाल लेने से चित्त शान्त हो जाता है—बेहोशी का डर नहीं रह जाता। हाँ, पास में थोड़ी चाय और चीनी का होना भी आवश्यक है।

एक बात और। ठंडे देशों में ऊनी कपड़ों के बिना सफर करना बहुत ही कठिन है, बल्कि असम्भव है। मेरे पास ऊनी

वस्त्र नहीं थे। मैं केवल एक खद्दर की दोहर, एक जोड़ा धोती, एक कम्बल और एक लोटा लेकर चला था। मेरी इस तैयारी को देखकर बहुतों ने यहाँ तक डरवाया कि बर्फ में गलकर मर जाओगे; पर मैं ईश्वर के भरोसे निकल ही पड़ा।

अल्मोड़ा-निवासी सज्जनों ने मेरी बड़ी सहायता की। उन्हें कहाँ तक कितना धन्यवाद दूँ? वकीलों ने अपने भोटिया मवक्किलों के नाम, हाकिमों ने जंगल और डाकघर के अफसरों के नाम, तथा टमटाजी ने अपने सब भोटिया व्यापारियों के नाम, मेरी सहायता करने के लिए, पत्र दिये। इन पत्रों ने आगे चलकर मेरी खूब सहायता की। ईश्वर की दया!

# द्वितीय सोपान

## 'अल्मोड़ा' से 'धारचूला'

अल्मोड़ा से मानस-सरोवर जाने के दो रास्ते हैं। एक रास्ता 'बागेश्वर', 'मीलम' और 'जोहार' होकर गया हुआ है। इस मार्ग से लोग 'ऊँटाधूरा' के 'पास' से हिमालय पार कर तिब्बत में प्रवेश करते हैं। दूसरे रास्ते से 'व्यास', 'चौंदास' और 'गर्बेयांग होकर 'लीपलेक' नामक पास (घाटी) द्वारा तिब्बत में प्रवेश करते हैं। हाँ, एक तीसरा मार्ग भी है। वह 'दारमा' होकर जाता है और 'खेला' से मिलता है। 'जोहार' वाले रास्ते में पढ़े-लिखे लोगों की बस्तियाँ हैं; वे यात्रियों की यथोचित सहायता करते हैं। परन्तु मैं तो 'गर्बेयांग' वाले रास्ते से ही चला।

यथार्थ में मेरी यात्रा ९ जून (शुक्रवार) से आरम्भ हुई। सवेरे छः बजे मैं अपने गर्बेयाली साथी 'टस्सी' के साथ चला। संयोगवश दो गर्बेयाली और मिल गये। 'वारीछीना'-चट्टी आठ मील पर है। वहाँ से एक सड़क 'पिथौरागढ़' और दूसरी 'अस्कोट' गई है। हमलोगों ने यही दूसरी सड़क—'अस्कोट' की राह—पकड़ी। दो मील आगे एक नदी के किनारे स्नान-भोजन किया। फिर कुछ देर विश्राम कर आगे बढ़े। 'वारीछीना' से साढ़े पाँच मील पर 'धौलछीना' चट्टी होते हुए, शाम को,

धौलछीना से साढ़े दस मील दूर, 'शेराघाट' चट्टी पर पहुँचकर वहीं डेरा डाला। आज हम लोग चौबीस मील आये।

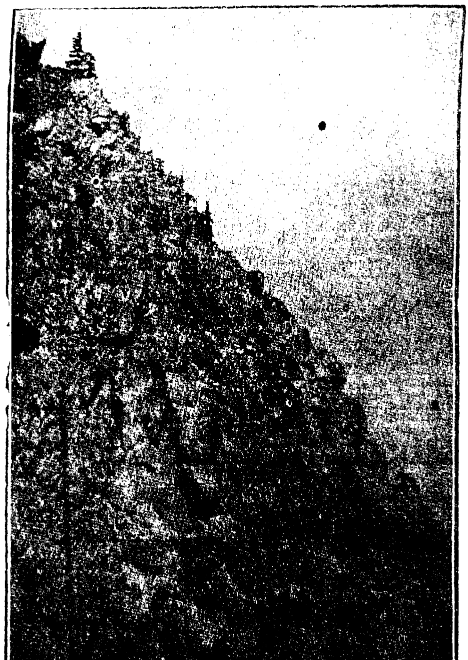
*अल्मोड़ा से धौलछीना तक पूरी चढ़ाई है, और वहाँ से शेराघाट तक कड़ा उतार!*

तारीख १० जून, शनिवार—शेराघाट से छः मील पर 'गनाई' नामक स्थान यात्रियों के ठहरने के लिए उत्तम है। यहाँ बाजार और डाक-बँगला भी है; पर मैं यहाँ न ठहरकर चार मील और आगे 'साता' नामक गाँव में चला गया। इस गाँव में कोई रहता नहीं! यह गाँव बाबू विष्णुसिंह और जसवन्तसिंह 'वाँसा'-गाँववाले का है। वे लोग इन दिनों धान रोपवाने के लिए यहाँ आये हुए थे। उनके यहाँ मेरा बड़ा सत्कार हुआ।

आज मुझे 'वेणीनाग' पहुँचना था। भोटिये प्रायः पगडंडी होकर ही चला करते हैं। परदेसी आदमियों के लिए ऐसा पहाड़ी रास्ता बड़ा कष्टकर होता है। मुझे भी लाचार 'टस्सी' के साथ पगडंडी पर ही चलना पड़ा।

'साता' से 'वाँसा'-गाँव प्रायः दो मील की दूरी पर है। इस गाँव के बाद चढ़ाव-उतार बहुत है। इन्हें पार करता हुआ मैं शाम को 'वेणीनाग' पहुँचा। भोटिये बाजार में रहना पसंद नहीं करते। मेरे हजार कहने पर भी मेरे गर्वेयाली-साथियों ने जंगल ही में डेरा डाला। आज हम लोग १८ मील चले। 'वेणीनाग' में चाय की खेती होती है; पर यहाँ की चाय

'भाटे'-देश में ही खप जाती है। यहाँ डाकघर भी है। रात को मैं दो-चार बादाम-छुहारे खाकर ही रह गया।



[ हिमालय की एक दुर्गम घाटी ]

११ जून, रविवार—'बेणीनाग' में पंचाचुली-पर्वत साफ देख पड़ता है। दस मील का उतार चलकर 'थल' ( Thal ) पहुँचे। यहीं 'रामगंगा' में स्नान किया, फिर खिचड़ी पकाकर

खाई। यहाँ एक मंदिर भी है, जहाँ हर संक्रान्ति को मेला लगता है। इस मेले में भोटिया लोग कम्बल, चँवर आदि बेचते हैं।

भोजन के बाद हमलोग चल पड़े। चार मील की चढ़ाई के बाद चार मील का उतार मिला। मेरे पैरों में, 'बूट' पहने रहने के कारण, छाले पड़ गये। मेरे भोटिया साथियों के पैरों में भी छाले पड़ गये थे। पर मेरे लाख कहने पर भी वे दम लेने का नाम नहीं लेते थे। मैं उनके साथ आकर पछता रहा था; किन्तु अब क्या हो सकता था। मैं भी उनके पीछे-पीछे लँगड़ाता—पैर घसीटता—किसी तरह चला ही गया।

शाम को हम लोग वेणीनाग से २० मील की दूरी पर 'डीठीहाट' पहुँचे। मैं एक दूकानदार के यहाँ ठहरा। उसने पूरियाँ बनाईं। मैंने खा-पीकर विश्राम किया। यहाँ के एक डाकबँगले में एक पहाड़ी पादरी से भेंट हो गई। उससे यह बात मालूम हुई कि ईसाई-धर्म का भी यहाँ प्रचार है! खैर, अभी तक मुझे सर्दी नहीं मिली थी। आज २० मील चला।

१२ जून, सोमवार—'डीठीहाट' से 'अस्कोट' ७ मील दूर है। मुन्शी व्रजबासीलाल की कृपा से यहाँ के स्कूल के हेड-मास्टर ने मेरा बड़ा आदर किया—कुँअर साहब से मेरा परिचय भी कराया। श्री हरिराम पांडेय ने राजवाड़ा-साहब को मेरे विषय में सूचना दे दी थी। यदि मैं रायबहादुर धर्मानन्दजी का पत्र न भी लाता, तो कुँअर साहब मेरे सम्मान-सत्कार में किसी प्रकार की कमी न करते। उन्होंने मेरे रहने

का प्रबन्ध स्कूल में कर दिया। वहाँ कुछ दिन ठहरने का आग्रह भी किया। मैं इतना थका-माँदा था कि कुँअर साहब का आग्रह धन्यवादपूर्वक स्वीकार ही करना पड़ा।

१३ जून, मंगलवार—पैर में दर्द होने के कारण दिन-भर चलने-फिरने से लाचार रहा। सवेरे डाकघर में बैठा डाक-बाबू 'पंडित हरिवल्लभ अवस्थी' से बातें कर रहा था। इतने में एक आदमी कोई तार पढ़वाने के लिए आया। यह तार पिथौरागढ़ से डाक द्वारा आया था, क्योंकि इस स्थान में तार-घर नहीं है। उसमें किसी व्यक्ति ने लिखा था कि मैं स्वयं नहीं आ सकता; जिस लड़की से मेरी शादी ठीक हुई है, उसे मेरे ही घर ले आओ। पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ की यही परिपाटी है—लोग लड़की को एक-दो साल तक अपने घर में रखकर बाद को उसे ब्याहते हैं! परन्तु उच्च कुल के क्षत्रियों में यह चाल नहीं है। हाँ, नैपाली राजपूतों में अधिक है। उनमें तो विधवा-विवाह भी होता है। वे 'खस'-राजपूत कहलाते हैं।

'अस्कोट' से दो मील पर 'काली'-नदी है। यही नैपाल की सरहद है। शाम को श्रीमान् कुँअर साहब मुझसे मिलने आये, तो मेरे पैर के दर्द पर उन्होंने दारचीनी की छाल पीसकर लगाने को कहा।

•

१४—१५ जून, बुध-बृहस्पतिवार—पैर के दर्द से लाचार ही रहा। पर पंडित हरिवल्लभ अवस्थी के साथ मेरा दिल बहल गया। आप हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं—कविता भी कर लेते

हैं। उनसे मुझे मालूम हुआ कि यहाँ पर किसी को यदि साँप डँसता है, तो लोग उस जगह पर मधु लगा लेते हैं—खिलाते भी हैं; गुलाब की जड़ भी पीसकर लगाते और खिलाते हैं।

दोनों दिन खूब वर्षा हुई। कुहरा छाये रहा। हाथ पसारे नहीं सूझता था। मकान के नीचे बादलों के दल लटकते-से दीखते थे—कभी ऊपर, कभी नीचे आते-जाते थे। मेरे निकट एक बूँद भी जल नहीं, और ठीक मेरे नीचे मूसल-धार वर्षा! ऐसा मनोहर दृश्य पहाड़ी देशों में ही नसीब है। साधारणतः यहाँ पानी की कमी है। यह स्थान अल्मोड़ा से ६६ मील है। यहाँ से २६ मील पर पिथौरागढ़ है।

१६ जून, शुक्रवार—आज पैर की पीड़ा एकदम जाती रही। मैं आगे बढ़ने को तैयार हो गया। राजवाड़ा-साहब ने मेरे आने की सूचना अपने राज्य में दे दी थी—इसलिए कि मुझे यथासमय सहायता मिल सके। चलते समय आपने एक अपना सिपाही और एक कुली मेरे साथ कर दिया; क्योंकि 'टस्सी' चला गया था। सिपाही को ताकीद कर दिया कि मुझे धारचूला तक पहुँचा दे—साथ ही, वहाँ मुझे 'कैलास' तक पहुँचाने के लिए एक कुली भी ठीक कर दे। खैर, अस्कोट से गर्जिया-पुल तक तीन मील का खड़ा उतार मिला। गर्जिया के समीप ही 'धवलीगंगा' और 'कालीगंगा' का संगम है। यहाँ कातिक-पूनो के दिन हर साल बड़ा भारी मेला होता है। यही मेला अल्मोड़ा-जिले में सबसे बड़ा है। इसका नाम 'जोल-

जीवी का मेला' है। यहाँ तिब्बत के व्यापारी भी अपना माल बेचने के लिए लाते हैं। इसके बाद 'बागेश्वर का मेला' है। यह सरयू और गोमती के संगम पर लगता है। तीसरा मेला 'थल' का है। उसका वर्णन ऊपर हो चुका है।

शाम को मैं 'बलवाकोट' नामक गाँव में पहुँचा। यह अस्कोट से ११ मील है। सिपाही ने राजवाड़ा-साहब की चेतावनी के अनुसार मुझे गँड़ा-प्रधान के मकान में ठहराया। उन्होंने एक अच्छी धर्मशाला बनवा रक्खी है; क्योंकि सदर सड़क पर—जो गाँव से आध मील दूर है—कोई दूकान या ठहरने की जगह नहीं है।

१७ जून, शनिवार—सवेरे बादलों ने आकाश को ढँक लिया था। सिपाही ने एक दूसरा कुली ठीक कर दिया। आध मील के उतार के बाद तीन मील का खुला चौरस रास्ता मिला। रास्ते में सतालू और केले के बहुत-से पेड़ मिले। कहीं-कहीं आम के पेड़ भी दीख पड़ते थे। इस देश में 'शफ़तालू' को 'आरू' कहते हैं। सिपाही ने मुझे 'सतालू' खूब खिलाये। चौरस सड़क के बाद कुछ चढ़ाई चढ़नी पड़ी। 'बलवाकोट' से साढ़े पाँच मील पर 'कालिकाग्राम' है। यहाँ हम लोगों ने गर्मी से विश्राम पाया—नदी में स्नान किया। यहाँ कुली को बदलकर दोपहर को 'धारचूला' की ओर चले, जो अब केवल साढ़े चार ही मील बाकी था। रास्ता अच्छा है। शाम को धारचूला पहुँच गये। मेरी इच्छा पंडित लोकमणिजी के यहाँ ठहरने की

थी। पर पंडित प्रेमवल्लभजी ने मुझे रोक रक्खा; मैं उन्हीं का अतिथि हुआ। राजवाड़ा-साहब की आज्ञा से वहाँ के प्रधान महाशय ने मेरे लिए १५) मासिक पर एक कुली ठीक कर रक्खा था। वह भी आकर उपस्थित हुआ।

१८ जून, रविवार—आज ही महात्मा गांधी के कैद होने की तिथि है। मैंने 'काली'-नदी में स्नान कर देश के कल्याण के लिए थोड़ी देर ईश्वर-प्रार्थना की। नदी का पानी बर्फ-सा ठंडा था। केवल एक-दो लोटे से कौआ-नहान नहाया! पंडित लोकमणिजी की, कम्बल और दवाओं की, एक दूकान है। 'भोट'-देश यहीं से आरम्भ होता है। आज बहुत दिनों पर कच्ची रसोई मिली। पंडितजी ने एक मरहम दिया—पैर की पीड़ा भी बहुत-कुछ दूर हो गई।

यहीं भोटिया-तपस्विनी श्री रुमादेवीजी से भेंट हुई। आप संसार के सुखों को लात मारकर संन्यासिनी हो गई हैं। आप श्रीरामकृष्ण-आश्रम ( बेलूड़-मठ, बंगाल ) की शिष्या हैं। आप ही की कृपा से बहुत-से साधुओं ने कैलास-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया है। बहुतों के साथ तो आप स्वयं कैलास गई हुई हैं—इसलिए कि उन्हें कष्ट न हो। कैलास-यात्रियों के मार्ग-कष्ट और कठिनाइयों के कारण आपकी इच्छा है कि धारचूला के पास ही एक अच्छी-सी धर्मशाला बनवाई जाय। इसके लिए आप चंदा भी इकट्ठा कर रही हैं।

लोगों ने मुझे यहाँ दो-चार दिन ठहरने को कहा; क्योंकि बर्फ के न गलने से अभी रास्ता साफ नहीं था। मुझे भी यही उचित जँचा। लोकमणिजी के यहाँ मुझे घर से भी अधिक आराम मिला।

१६ जून, सोमवार—आज 'पबलिक-वर्क्स-डिपार्टमेंट' के 'ओवर्सियर' बाबू प्रतापनारायणसिंह से भेंट हुई। वे 'गर्बे-यांग' से आगे तक गश्त करनेवाले थे। उनके साथ पिथौरा-गढ़ के पंडित केदारदत्त पाटनी और गढ़वाल-जिले के ठाकुर जगतसिंह भी थे। उन्होंने मुझसे, अवसर मिलने पर, कैलास तक चलने की इच्छा प्रकट की। मुझे बड़ा धीरज हुआ। उन्होंने आगे का सब बन्दोबस्त कर लिया।

तारीख २१ बुधवार तक मैं 'धारचूला' में ही रहा। यहाँ तक तो गर्मी मिलती है। इसके आगे बड़ी सर्दी पड़ती है। इस कारण बहुत-से भोटिये यहीं जाड़ा काटते हैं। काली-नदी के दूसरे पार में नैपाल-राज्य है। धारचूला के ठीक सामने ही कचहरी है। नदी का वेग बड़ा तीव्र है; पुल नहीं बन सका है; झूले पर लोग पार करते हैं।

मानस-सरोवर के यात्रियों को चार स्थानों में चार तरह का बन्दोबस्त करना पड़ता है। एक तो अलमोड़ा से धारचूला तक; इतनी दूर का स्थान पहाड़ी होने पर भी विशेष कष्टकर नहीं है, यहाँ के लोगों की भाषा भी समझ में आ जाती है, ब्राह्मणों में यहाँ छुआछूत अधिक है! दूसरा 'धारचूला' से 'गर्बेयांग'

तक; इसी के बीच 'व्यास' और 'चौंदास' पड़ता है, यही असल 'भोट'-देश है, यहाँ की भाषा समझ में नहीं आती। तीसरा 'गर्बेयांग' से 'ताकलाकोट' तक। चौथा 'ताकलाकोट' से 'मानस-सरोवर-कैलास' तक।

मैंने एक बात 'धारचूला' में बड़े अचरज की देखी—कुहरे के साथ मिट्टी बरसती है! ऐसे स्थान में, जहाँ मिट्टी का नाम-निशान नहीं, मिट्टी का बरसना एक अजीब ईश्वरीय माया-सा जान पड़ा! मैंने एक पत्थर साफ कर कुहरे में रख दिया—थोड़ी देर में उसपर मिट्टी पड़ी देखी! अल्मोड़ा यहाँ से ९० मील और गर्बेयांग ५१ मील है।

# तृतीय सोपान

## 'धारचूला' से 'निरपनियाँ'

२२ जून, गुरुवार—आज मैं कूच करनेवाला था; पर वर्षा जोरों में होने लगी। लोगों ने मुझे रोकना चाहा—वर्षा के कारण नहीं; पहाड़ों के टूटने के भय से। पर मैं तैयार हो गया। पहाड़ों के टूटकर गिरने की आवाज साफ सुन पड़ती थी। श्री रुमादेवीजी का हृदय मुझे अकेला देखकर स्नेह से उमड़ उठा। मेरे साथ वे स्वयं भी चलने को तैयार हो गईं। अहा! ऐसा प्रेम तो किसी माता का भी अपने पुत्र पर नहीं हो सकता!

हम दोनों चल पड़े। रास्ता तो खराब था ही, वर्षा के कारण और भी खराब हो गया था। 'धारचूला' से एक मील की दूरी पर माताजी ने मुझे एक स्थान दिखलाया, जिसका नाम 'तपोभूमि' है। उनका विचार इसी स्थान पर एक धर्मशाला बनवाने का है। यह स्थान बड़ा ही एकान्त और तपस्या के लिए बहुत ही उपयुक्त है। यहीं नदी के किनारे एक तप्त कुंड है, जो पहाड़ के गिरने से बन्द हो गया है; पर थोड़े ही खर्च से फिर उसका मुँह खोला जा सकता है। यह स्थान राजवाड़ा-साहब के राज्य में है, और उन्होंने रुमादेवीजी को यहाँ धर्मशाला बनवाने की आज्ञा भी दे दी है।

अभी हम लोग तपोभूमि से कुछ ही दूर आगे गये होंगे कि पहाड़ की चट्टानें टूट-टूटकर गिरने लगीं। एक टुकड़ा तो ठीक मेरे सामने ही गिरा—मैं बाल-बाल बच गया! आज प्रलय का दृश्य था। मूसल-धार पानी का बरसना, कड़कड़ाकर बिजली का कौंधना, भयानक शब्द के साथ चट्टानों का टूटना, 'काली'-नदी की तीव्र धारा का गरजना—रह-रहकर हृदय को कँपा रहा था। इस पर पहाड़ों की चढ़ाई-उतराई और भी गजब ढा रही थी। कहीं कोई गाँव भी नहीं, जहाँ प्रलय-काल में शरण मिले! 'खेला' अभी यहाँ से ९ मील दूर था। पहाड़ों में कहीं-कहीं दो-चार गुफाएँ भी दीख पड़ती थीं; पर उनमें शरण लेने का साहस न हुआ। जब लाखों मन की चट्टानें लुढ़क-लुढ़ककर नीचे आ रही थीं, तब भला उन गुफाओं का क्या भरोसा था!

हम लोग चलते ही गये। हमारे कपड़े बिल्कुल तर हो रहे थे। चढ़ाई-उतराई के कारण पसीना भी आ रहा था। राम-राम करते हम लोग करीब दो बजे दिन को 'खेला' पहुँचे। उस दिन वहीं विश्राम किया। खाने-पीने का सामान 'धारचूला' से ही साथ लाये थे।

'धारचूला' में ही लोगों ने मुझसे ऊनी कपड़े बनवाने को कहा, जिसमें दो सौ रुपये लगते। मेरे पास इतने रुपये कहाँ थे? पर पंडित लोकमणिजी ने मेरे आगे ऊनी कपड़ों की गाँठ-की-गाँठ रख दी, और मुझे आज्ञा दी कि जिस कदर कपड़े

की जरूरत हो, ले लीजिये, फिर मुझे लौटा दीजियेगा। इस दया के कारण मैं पंडितजी का सदा ऋणी रहूँगा। भला किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ कौन ऐसा बर्ताव करेगा ? पर सज्जन पुरुष निःस्वार्थ भाव से सबका उपकार किया ही करते हैं। खैर, मैंने उनमें से एक ओवरकोट, एक पाजामा, एक कनटोप और एक जोड़ा 'दोकचा' ( तिब्बती जूता ) ले लिया। ये सारे कपड़े भींगकर कुली की पीठ के बोझ हो गये थे ! मैंने सबको 'खेला' में खोलकर सुखाया।

२३ जून, शुक्रवार—आज हम आगे न बढ़ सके; क्योंकि हमारे कपड़े अभी सूखे न थे। यहाँ तक केले आदि फल मिलते हैं। दिन को मक्खियाँ और रात को मच्छड़ बहुत तंग करते हैं। यहाँ से एक और रास्ता 'दारमा'-घाटी होकर तिब्बत गया हुआ है। 'दारमा'-घाटी की ओर से धौलीगंगा आकर 'खेला' के पास काली नदी से मिलती है। इन पहाड़ों से तीन प्रसिद्ध नदियाँ निकलती हैं—(१) कालीगंगा, जो व्यासपट्टी के कालापानी के पास से निकलती है; (२) गोरी गंगा, जो 'जोहार-ऊँटाधूरा' के पास से निकलती और जोलजीवी के समीप कालीगंगा से मिलती है, यहीं से गोरीगंगा का नाम लुप्त हो जाता है; (३) धौलीगंगा, जिसका वर्णन पहले हो चुका है। इन तीनों में कालीगंगा ही अधिक भयानक है। लोहाघाट के पास पंचेश्वर में, बागेश्वर होकर बहनेवाली सरयू और 'थल' होकर बहनेवाली रामगंगा का कालीगंगा के साथ संगम है। इस

सम्मिलित धारा का नाम टनकपुर तक 'कालीगंगा' ही रहता है। उसके बाद बाराबंडी तक इसका नाम 'शारदा' है। फिर इसी का नाम 'घाघरा' और फैजाबाद से दस मील आगे 'सरयू' पड़ता है। वास्तव में नदी एक ही है। मुझे इसी नदी के किनारे-किनारे 'गर्जिया' होते हुए 'काला-पानी' यानी 'लिपुधूरा' तक जाना था।

'खेला' के लोग पढ़े-लिखे न होने पर भी बड़े सुखी हैं। एक समय की बात है, वहाँ के अधिकारी ने वहाँ एक लोअर-प्राइमरी-स्कूल खोलने का विचार किया। वहाँ का प्रधान इस बात को सुनकर धौलीगंगा के उस पार नैपाल-राज्य में जा बसने को तैयार हो गया। कारण, उसे इस बात का भय था कि उसके लड़के पढ़कर गाय चराना छोड़ देंगे! सच है, जहाँ अज्ञानता ही सुख है, वहाँ बुद्धिमानी ही मूर्खता है!

२४ जून, शनिवार—सवेरे थोड़ा-थोड़ा दूध पीकर रवाना हुए। एक मील के उतार के बाद हम लोगों ने धौलीगंगा में झूले को पार किया। फिर, तीन मील की चढ़ाई मिली। यहाँ भी वर्षा के कारण चट्टानों के टूटने से प्राण संकट में ही रहता है। किसी-किसी तरह एक मील की चौरस सड़क पर चलकर हम लोग 'पुङ्ग' नामक गाँव में पहुँचे, और 'मोती माँ' नामक एक धनी भोटिया स्त्री के घर ठहरे। पति-वियोग के शोक से वे बहुत रोया करती थीं। रुमादेवी के कहने से मैंने उन्हें कुछ पुराणों की कथाएँ सुनाईं, जिनसे उन्हें कुछ धैर्य हुआ।

रोते-रोते उन्हें एक साधारण-सा रोग हो गया था। मैंने उन्हें दवा भी दी। ईश्वर की दया हुई, वे अच्छी हो गईं। प्रसन्न होकर उन्होंने धर्मशाला के चन्दे में रुमादेवी को एक हजार देने का वचन दिया। खैर, यह स्थान समुद्र-तल से ६००० फीट ऊँचा है। यहाँ खासी सर्दी पड़ती है। यहीं से चौंदासपट्टी का आरम्भ होता है।

२५ जून, रविवार—सवेरे मोतीसिंह नामक एक सज्जन हम लोगों को अपने घर ले गये; बड़ा सत्कार किया। फिर 'पुङ्ग' से चलकर हम लोग 'सोसा' नामक गाँव में पहुँचे, जो ढाई-तीन मील की दूरी पर है। यहाँ सब लोग ताकलाकोट-मंडी जाने की तैयारी में लगे थे। 'फीचा' नामक छोटे-छोटे बोरों में अन्न भरकर बकरियों पर लाद रहे थे। बहुतों ने मुझसे कहा कि जबतक ताकलाकोट की मंडी न खुल जाय, तबतक आप न जायँ; क्योंकि वहाँ डाकुओं का बड़ा भय है। जब भोटिया व्यापारी वहाँ पहुँच जाते हैं, तब वे यात्रियों के जानो-माल की रक्षा करते हैं—उनकी सहायता भी करते हैं। अभी तक कोई भोटिया व्यापारी ताकलाकोट नहीं पहुँचा था। पर मैंने एक स्थान में ठहरने से थोड़ा-थोड़ा रास्ता काटना ही अच्छा समझा। व्यास और चौंदास के पटवारी दिलीपसिंह और खुशहालसिंह यहीं ( सोसा ) के रहनेवाले हैं। अल्मोड़ा के वकीलों के पत्र के कारण मुझे इनके यहाँ बड़ा आराम मिला। रुमादेवी भी यहीं रहनेवाली अपनी बहन के पास चली गईं।

२६ जून, सोमवार—आज हमें 'तोज्या' नामक गाँव में श्रीलालसिंह के यहाँ ठहरना था, जो रुमादेवी के सम्बन्धी थे। यह गाँव 'सोसा' से तीन-साढ़े-तीन मील की दूरी पर है। सोसा से डेढ़ मील दूर एक देवी-मन्दिर है, जिसके समीप राजकर्मचारियों के खीमे खड़े किये जाते हैं। स्थान बड़ा सुहावना है। छोटे-छोटे पौदों में सुन्दर-सुन्दर फूल बड़े भले जान पड़ते थे। इसके बाद एक मील और आगे हमें 'सीरख' नामक गाँव मिला। यहाँ से सदर रास्ता छोड़कर नीचे उतरे और आध मील चलकर 'तीज्या' पहुँचे। श्रीलालसिंहजी को राजवाड़ा-साहब के पत्र द्वारा मेरे आने की सूचना पहले ही मिल चुकी थी। वे मेरी राह देख रहे थे। उन्होंने मुझे सम्मान-पूर्वक अपने घर में ठहराया। उनकी माता रुमादेवी की चचेरी बहन हैं। यहाँ जाड़े के दिनों में बर्फ गिरती है; पर लोग अपने स्थान को नहीं छोड़ते। गाँव के सब लोग ताकलाकोट जाने की तैयारी कर रहे थे। उनका माल बकरियों पर लादा जा रहा था।

२७ जून, मंगलवार—आज दिन-भर श्रीलालसिंह के मकान पर ही ठहरा। उनके गाँव के श्रीखड्गसिंह ने मुझे अपने यहाँ निमंत्रित किया। श्रीलालसिंह और उनकी माता—जो मुझे अपने बच्चे की तरह प्यार करती थीं—मुझे खड्गसिंह के यहाँ जाने देने को राजी न थीं; पर यह समझकर कि खड्गसिंह दो ही एक दिन में ताकलाकोट जानेवाले थे और उनके साथ जाने में मुझे विशेष सुविधा होगी, उन्होंने मुझे उनके यहाँ जाने दिया।

गाँववालों में जो तिब्बत जानेवाले थे, वे एक दूसरे से प्रेम-पूर्वक मिल रहे थे; क्योंकि उन्हें भी तिब्बत की यात्रा में प्राण का भय रहता है। आज की रात मैं खड्गसिंह के यहाँ रहा। उन्होंने मेरे ओढ़ने-बिछाने के लिए 'चीन' और 'लद्दख' के बने हुए कम्बल और लोइयाँ दीं, जो हमारे प्रान्त में राजे-महाराजों के सिवा और किसी को नसीब नहीं।

२८ जून, बुधवार—श्रीखड्गसिंह कल ताकलाकोट जानेवाले हैं; इसी कारण मैं आज भी उन्हीं के यहाँ ठहरा रह गया। आज 'सिरखा' के पंडित श्रीकेसरसिंहजी का कृपापूर्ण निमंत्रण स्वीकार करना पड़ा।

२९ जून, वृहस्पतिवार—आज सवेरे ही खड्गसिंह के साथ चलने की बात थी। इस कारण श्रीलालसिंह ने बहुत सवेरे ही रसोई बनवाई। रसोई खाकर कुछ देर तक आराम किया। रुमाबाई भी चलने को तैयार हो गई। उन्हें लौट जाने को बहुतेरा कहा गया; पर वे जाती न थीं। खड्गसिंह के यह विश्वास दिलाने पर कि मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा, धारचूला लौटने को राजी हुई। मैं कुली को लेकर खड्गसिंह के साथ १ बजे चल पड़ा। रुमादेवी, लालसिंह, उनकी माता और स्त्री तथा गाँव के और-और लोग दूर तक हम लोगों को पहुँचाने आये। यात्रा की सफलता के लिए सबने आशीर्वाद भी दिया।

हम लोग सबसे बिदा हो चले। आध मील चलने के बाद हम लोगों ने 'सिरखा' वाली सड़क पकड़ी। यहीं से सघन और

नेत्रों को सुख देनेवाले सुन्दर जंगलों से होते हुए कड़ी चढ़ाई पर जाने लगे। तीन मील की चढ़ाई के बाद दो मील का उतार मिला। यहाँ चढ़ाव—उतार के कारण बहुत परिश्रम से चलना पड़ता है। यात्री बहुत शीघ्र हाँफने लगते हैं। यद्यपि मैं थका न था; पर मेरा कुली और खड्गसिंह एकदम थक गये! इसलिए हमलोग आगे के गाँव 'स्यागखीला' में—जो 'तीज्या' से ६ मील की दूरी पर है—ठहर गये। रात यहीं कटी।



[ एक बुड्ढा भोटिया कुली ]

३० जून, शुक्रवार—उक्त स्थान से दो मील के बाद 'निरप-नियाँ' का मार्ग आरम्भ होता है, और कड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। इसलिए हम लोगों ने कच्ची रसोई बनाकर खाई। खाकर करीब आठ बजे सवेरे चल पड़े। थोड़ी ही दूर जाने के बाद वर्षा आरम्भ हुई। दो मील जाते-जाते हमलोग एकदम

शराबोर हो गये। अब हमलोगों को चढ़ाई चढ़नी थी, और वर्षा के कारण रास्ते में एकदम फिसलन हो गई थी; इसलिए हम लोग दो मील पर 'गल्ला' नामक गाँव में ठहर गये। मैंने खड्गसिंह के साथ एक फूस के मकान में आश्रय लिया, जिसमें लड़के पढ़ाये जाते थे। खड्गसिंह के लगभग २० साथियों ने भी उसी मकान में विश्राम किया। वहाँ से निरपनियाँ का मार्ग दीख पड़ता था। मैं तो क्या, जितने भोटिये थे, सबका हृदय केवल उसका स्मरण करके ही काँप रहा था।

१ जुलाई, शनिवार—सवेरे हम लोग ईश्वर का नाम लेकर आगे बढ़े। प्रकृति ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। आकाश में घटाटोप मेघ छाये थे। पानी नहीं पड़ता था, पर वर्षा होने की आशंका प्रत्येक क्षण थी। कुछ ही दूर जाने के बाद निरपनियाँ की चढ़ाई आरम्भ हुई। इस रास्ते के नीचे भी भोटियों ने अँगरेज़ी सरकार की सहायता से एक रास्ता बनवाया है; पर इसका यह हाल है कि हर साल आसिन-कातिक में यह दुरुस्त किया जाता है, और जेठ में काली-नदी उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देती है—कभी पुल तोड़ देती है, कभी पहाड़ तोड़कर रास्ता बन्द कर देती है। वर्षा आरम्भ होने से पहले ही भोटिया लोग अपने घोड़े आदि को उसी नीचे के रास्ते से गर्बयांग ले जाते हैं, और फिर वहाँ से ताकलाकोट जाते हैं। यह मार्ग पक्का होता, तो इसके टूटने या बिगड़ने का कम डर था। हमारी सरकार हर साल कुछ खर्च करती है; पर एक ही साल भरपूर खर्च

करके खूब मजबूत पुल नहीं बनवाती है ! भोटिया लोग इसके लिए बराबर आन्दोलन करते हैं; पर उसकी सुनवाई नहीं होती ! अभाग्य से इस समय भी यह रास्ता खराब हो गया था; इसलिए हमें ऊपर के रास्ते से ही जाना पड़ा। इस रास्ते को राजवाड़ा-साहब के पुरखों ने बनवाया था। इसी रास्ते का नाम 'निरपनियाँ' है।

× × × ×

हाँ, तो हमलोग ईश्वर का नाम लेकर आगे बढ़े। एकदम खड़ी चढ़ाई थी। थोड़ी ही दूर जाने पर मेरा दम फूलने लगा। मैं एकदम थक गया। साँस जोर-जोर से चलने लगी। सिर में चक्कर-सा आने लगा; पर किसी-किसी प्रकार लाठी के सहारे मैं ऊपर चढ़ता ही गया। कभी-कभी दम लेने के लिए ठहर जाता था। भोटियों की भी यही अवस्था थी, कभी-कभी इतना कुहरा छा जाता था कि आगे बढ़ना कठिन हो जाता था। भाई खड्गसिंह ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे चलने में सहायता दी।

कुछ दूर जाने के बाद सीढ़ीदार रास्ता मिला। सीढ़ियाँ मानों आकाश में लगी थीं ! प्यास मालूम होने लगी; पर पानी कहाँ था ! ईश्वर की कृपा से तीन मील की चढ़ाई समाप्त हुई, तो अब उतार आरम्भ हुआ ! मैंने कुछ बादाम और मिसरी खाकर प्यास बुझाई, और कुछ सुस्ताने के बाद आगे बढ़ा। उतार में भी सीढ़ियाँ थीं। इस चढ़ाई-उतराई का नाम 'भेले-पखान' है। इन सीढ़ियों पर चलना बड़े जोखिम का काम था।

पग-पग पर फिसल जाने का डर था। थोड़ी असावधानी से ही प्राणों का भय था। एक जगह मेरा पैर फिसल गया और मैं हजारों फीट गहरी खाई में गिरते-गिरते बचा। एक ओर तो आकाश तक ऊँची उठी हुई पहाड़ी, और दूसरी ओर पाताल तक पहुँची हुई गहरी खाई! रास्ता कहीं दो हाथ, कहीं एक हाथ, और कहीं इतना तंग कि दोनों पैर साथ-साथ रखना मुश्किल! ऐसे तंग रास्तों में भी फिसलाहट अधिक! किसी का पैर फिसल जाय, तो बस, कैलास-यात्रा से पहले ही परलोक-यात्रा पूरी हो जाय!

मार्ग की कठिनाई यहीं तक नहीं समाप्त होती, बल्कि ऊपर से पहाड़ी चट्टानों के टुकड़ों के सिर पर गिर जाने का भय बराबर बना रहता है। यदि चलने को अच्छा मार्ग मिला, और पैर बढ़ाने में भी किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रही, तो भी ऊपर की पहाड़ी चट्टानों के गिरने से यमराज का क्रोध प्रकट होने लगता है। बहुत कम लोग ऐसे कठिन मार्ग से आगे बढ़ पाते हैं। अन्यथा बहुतों को परलोक का द्वार देखना पड़ता है। हाँ, जो साहसी हैं, जिनका शरीर खूब बलवान है, जिनका मन तनिक भी दुर्बल नहीं, उनके लिए निरपनियाँ का मार्ग विशेष कठिन नहीं है।

•

जीवन में कभी मुझे ऐसे रास्तों से काम नहीं पड़ा था। किसी के मुख से ऐसे विकट मार्गों का हाल भी नहीं सुना था। एकाएक निरपनियाँ के कठिन मार्ग पर आ डटना मेरे लिए

घोर साहस का काम था। मैंने एक बार अपने मार्ग से ऊपर की तरफ दृष्टि दौड़ाई—भयंकर! भयंकर!! पहाड़ों की बड़ी-बड़ी चट्टानें साक्षात् यम की तरह मुझे डराती थीं। अत्यंत भय से सहमकर मैंने अपनी दृष्टि नीचे कर ली; परन्तु नीचे तो और भी अधिक भयंकरता थी! अंधकूप के समान डरावनी हजारों फीट गहरी खाइयों को देखकर मेरा सिर घूम गया! बारम्बार परमात्मा की स्तुति के सिवा मुँह से और कोई बात नहीं निकलती थी। आखिर ऊपर और नीचे से दृष्टि हटाकर मैं अपने पाँव और रास्ते को देखने लगा। कभी बैठकर, कभी रास्ते की घासों का सहारा पकड़कर, आगे पैर बढ़ाता—कभी खड़ा होकर, कभी पहाड़ी दीवारों का सहारा लेकर, आगे चलता। बड़ी तकलीफ हुई। खैर, ज्यों-त्यों प्रभु का नाम लेते हुए मैंने तीन-चार मील उतराई का रास्ता तय किया। एक कुछ सुभीते की जगह पर पहुँचकर मैंने थोड़ा बादाम खाया, तब चित्त कुछ स्थिर हुआ। हाँ, सात मील उतराई के मार्ग में केवल एक झरना मिला, जिसके स्वच्छ-शीतल जल से मैंने अपनी तीखी प्यास बुझाई।

कुछ विश्राम के बाद मैंने फिर पैर आगे बढ़ाया। आगे का रास्ता भी बस वही सीढ़ीनुमा—कहीं खड़ी चढ़ाई, कहीं गहरी उतराई! बारह बजने का समय था। ठीक इसी समय जोरों से वर्षा होने लगी! एक तो विकट पहाड़ी-प्रदेश, तिस पर जोर की वर्षा! आह! वह दिन भी कैसा विकट था! वर्षा के कारण

आगे बढ़ना उचित न समझकर मेरे साथियों ने ठहरने के लिए इधर-उधर जगह ढूँढ़ना शुरू किया। ईश्वर की दया से पास ही में दो-तीन गुफाएँ मिलीं। गुफाएँ क्या थीं, पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानें तिरछी खड़ी थीं; संकट के अवसर पर प्राण-रक्षा के लिए बनाया हुआ स्थान था। वहीं सब-के-सब जा छिपे। परन्तु गुफाएँ भी बड़ी खतरनाक थीं! वर्षा की जोरावर धारा से चट्टानों के उलट जाने का भय हर घड़ी बना ही रहता था।

गुफा में पहुँच जाने पर भी मैं सर्दी से बेहाल हो गया। सारे शरीर में कँपकँपी छा गई। वर्षा बड़ी देर तक होती रही। फिर भी हमलोग गुफा में आध घंटे से अधिक नहीं ठहरे, बहुत थोड़ा विश्राम कर फिर आगे बढ़े। वर्षा के कारण आगे के मार्ग में और भी अधिक फिसलाहट मिली। इधर-उधर पहाड़ों की चट्टानें टूट-टूटकर गिर रही थीं। ऐसी दशा में कहीं बीच में ठहर जाना भी जान-बूझकर अपना प्राण गँवाना था। मैं तो लाठी और लम्बी-लम्बी घासों के सहारे आगे पाँव बढ़ाने लगा।



[ एक पहाड़ी झरना ]

मार्ग में एक बहुत बड़ा 'नीजाग-गाढ़' नामक झरना देखने में आया। उस झरने का जल बहुत ऊँचाई से बड़े वेग के साथ हर-हर करता हुआ नीचे गिर रहा था—आसपास पहाड़ों की टूटी-फूटी चट्टानें थीं। सुनने में आया कि गत वर्ष कई यात्री सैकड़ों भेड़-बकरियों पर माल लादे हुए इस मार्ग से जा रहे थे—रास्ते में ही चट्टानों के टूट पड़ने से अनेक यात्रियों और भेड़-बकरियों का संहार हो गया! झरने में कोई पुल नहीं था। हाँ, झरने के इस पार पत्थर की एक चट्टान थी, और उस पार भी इसी ढंग की एक दूसरी चट्टान थी। इन्हीं दो चट्टानों के सहारे कूदकर यात्री पार पहुँचते हैं! कभी-कभी तो सहमकर कितने यात्री झरने की तेज धारा में गिर जाते हैं—फिर उनका पता कहाँ!

भाई खड्गसिंहजी तो कूदकर सकुशल पार पहुँच गये; परन्तु मैं सिटपिटाने लगा। जब कभी मैं झरने को फाँदने का संकल्प करता, मेरी दृष्टि उसके तीव्र प्रवाह पर पड़ती—बस हिम्मत बैठ जाती! तब भाई खड्गसिंहजी के छोटे बन्धु मुझे ललकारकर उत्साह देने लगे। आँखें बंद कर मैंने प्रभु का नाम लिया, और जान की बाजी लगाकर फाँद गया! थोड़ी-सी तकलीफ तो हुई; मगर उस पार पहुँचने के बाद जान पड़ा कि बड़ी भारी लड़ाई जीत ली! खैर, पार पहुँचकर जब मैं सड़क की ओर बढ़ा, तब एकाएक मेरा पैर फिसल गया—झरने के तीव्र प्रवाह में पहुँचने वाला ही था कि शीघ्रता से किनारे की लम्बी-लम्बी मजबूत

घासों को जोर से पकड़ लिया, और दूसरे पैर को एक ऐसे स्थान पर अटकाया कि शरीर नीचे न खिसक सका। भाई खड्गसिंह के छोटे भाई मेरी यह दशा देखकर बहुत घबराये। उन्होंने झट अपना दुपट्टा लटकाया। मैंने एक हाथ से उसे पकड़ लिया। दूसरे हाथ से घास पकड़े हुए था। फिर धीरे-धीरे दोनों हाथों से दुपट्टा पकड़ लिया। इस तरह मैं ऊपर खींच लिया गया। ईश्वर की अपार दया से प्राणों की रक्षा हुई। रक्षा क्या हुई, नया जन्म हुआ!

अब यहाँ से आगे के मार्ग में भी जगह-जगह फिसलाहट मिलती थी। संध्या हो चली थी। इसलिए किसी एक स्थान पर पहुँच जाना आवश्यक था, जहाँ रात सुख से बीत सके। भाई खड्गसिंह के छोटे बन्धु ने मेरा हाथ पकड़ लिया। उन्हीं के सहारे से मैं उस फिसली राह पर आगे बढ़ने लगा। दूर तक चलने के बाद हम लोग 'मालपा' पहुँच गये। यहाँ पर भी एक झरना दिखलाई पड़ा। इसका रुख काली-नदी की ओर था। इसको पार करने के लिए इसके ऊपर दो मोटे-मोटे लट्ठ रक्खे हुए थे—उनके ऊपर पत्थर की चौड़ी-चौड़ी स्लेटें थीं। किन्तु इस पुल के बह जाने का भय बना रहता है, बल्कि आज भय की मात्रा अधिक थी। विचार हुआ कि आज हमलोग इसी पार कन्दराओं में रात बितायें, कल देखा जायगा।

पर भाई खड्गसिंह का इरादा आज ही उस पार पहुँचने का था। अतः इच्छा न रहते हुए भी हम लोग नाले के पुल से उस

पार गये। वहाँ 'ओडार' में डेरा जमाया। डाकघर के हरकारों के रहने के लिए बने हुए मकान को 'ओडार' कहते हैं। यह 'ओडार' ठीक काली-नदी के किनारे है। नीचे से इसकी जड़ फटी हुई थी। सदा भय बना रहता था कि आज नहीं तो कल अवश्य इसे काली-नदी लील जायगी। आखिर रात-भर 'ओडार' में हम लोगों को नींद नहीं आई। ज्यों-त्यों करके रात बीती। किन्तु प्रातःकाल हमलोगों के चेहरे पर विषाद की छाया न रही; क्योंकि अब यहाँ से आगे का मार्ग अधिक कठिन नहीं था—पग-पग पर संकटों का सामना नहीं था।

निरपनियाँ का कठिन रास्ता, 'गल्ला' से 'मालपा' तक, ११ मील की दूरी में, टेढ़ा-मेढ़ा, ऊँचा-नीचा, फैला हुआ है। मैं तो प्रभु से यही अभिलाषा करता हूँ कि हे भगवन्! निरपनियाँ के मार्गों के कष्ट किसी को स्वप्न में भी न झेलने पड़ें! मैंने स्वयं गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी के कठिन मार्गों में भ्रमण किया है; परन्तु निरपनियाँ के-से कठिन मार्ग कहीं भी देखने में नहीं आये। निरपनियाँ के पथ के पथिकों को बड़ी तैयारी और सावधानी से इधर आना चाहिये। धन्य हैं वे कुली, जो पेट के लिए डेढ़-डेढ़ दो-दो मन के बोझ लेकर इस राह से आते-जाते हैं। पेट बड़ा चांडाल है!

निरपनियाँ के मार्ग-कष्ट से उद्धार पाकर मैंने ईश्वर को बड़ा धन्यवाद दिया, और प्रार्थना भी की कि लौटती बार इसी प्रकार सकुशल निस्तार हो।

नीचे वाली राह से, 'गल्ला' से 'मालपा' ७ या ८ मील है। चौंदास-प्रान्त की सीमा 'गल्ला' में ही समाप्त हो जाती है। मालपा से व्यासपट्टी की सीमा आरम्भ होती है। अल्मोड़ा से मालपा १२६ मील है।

निरपनियाँ के सम्बन्ध में मैं अपने देश के उदार पुरुषों और सरकार की सेवा में दो-दो बातें कहना चाहता हूँ। निर-पनियाँ का मार्ग भोटिया-व्यापारियों का मुख्य पथ है। प्रति वर्ष वे तीन-चार लाख का माल लेकर लिपुधारा की ओर जाते हैं। इस कारण सदैव उन्हें निरपनियाँ-मार्ग की आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। जिनका भाग्य प्रबल रहा, वे बच गये; जो भाग्य के खोटे रहे, वे रसातल को पहुँच गये!

कैलास-यात्रा के प्रेमी अनेक भोले-भाले यात्री निरपनियाँ के रास्ते से होकर आते-जाते रहते हैं। यदि संयोग से कभी मार्ग ही में किसी अभागे यात्री की मृत्यु हो गई, तो बरसों उसके घर वाले उसकी बाट जोहते ही रह जाते हैं; पर कोई समाचार नहीं मिलता। कैसे मिले ? कोई साधन भी तो हो ?

हमारे देश के हजारों दानी अन्न-क्षेत्रों में, धर्मशालाओं में, मंदिरों में, लाखों रुपये खर्च कर अपनी दानवीरता का परिचय देते हैं। क्या हम आशा कर सकते हैं कि वे निरपनियाँ के कठिन मार्ग को सुगम बनाने की ओर ध्यान देंगे ? ऐसा करने से वे निश्चय ही कितने गरीब यात्रियों की प्राण-रक्षा का पुण्य और यश लूटेंगे।

फिर, अपने को प्रजा की हितू कहनेवाली सरकार का भी यह कर्त्तव्य है कि वह निरपनियाँ के बीहड़ रास्ते के कठोर कष्टों को दूर करने का उद्योग करे।

कानून के अनुसार भोटियों से 'टैक्स' ( कर ) तो वसूल किया जाता है; पर उनकी कठिनाइयाँ नहीं दूर की जाती! सरकार को इस पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

♣

# चतुर्थ सोपान

## 'निरपनियाँ' से 'ताकलाकोट'

तारीख २ जुलाई, रविवार—आज प्रातःकाल 'मालपा' से चल पड़े। पर्वत की चढ़ाई सीढ़ीनुमा थी। रास्ते से नीचे के हिस्से में काली-नदी बहती थी। चढ़ाई का रास्ता चौड़ा था। यात्रियों को रास्ता चलने में कोई तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। रास्ते में मैदान भी मिलते जाते हैं। जहाँ-तहाँ निर्मल झरनों के सुहावने दृश्य भी दिखलाई पड़ते हैं। खैर, रास्ते में दुख-सुख भोगते हुए, सात मील का रास्ता तय कर, मैं 'मालपा' से 'बुद्दी' जा पहुँचा। 'गल्ला' से लेकर 'बुद्दी' तक कहीं भी बस्ती नहीं है—एक झोपड़ी तक नहीं !

'बुद्दी' समुद्र की सतह से ९००० फीट की ऊँचाई पर बसी हुई एक खासी बस्ती है। यहाँ के—पत्थर के बने हुए—छोटे-छोटे मकान बड़े ही भले मालूम होते हैं। बस्ती के बालकों की शिक्षा के लिए यहाँ एक स्कूल भी है। यहाँ श्रीलालसिंहजी के ससुरालवालों ने मेरा बड़ा सत्कार किया। सिर्फ आध घंटे के बाद ही हम लोग यहाँ से आगे बढ़े। रास्ते में दो मील कठिन पहाड़ी चढ़ाई मिली। दस-दस कदम पर साँस फूलने लगी। किन्तु कैलासपति की कृपा से दो मील की कठिन चढ़ाई

के बाद ही एक खुला मैदान मिला। पहाड़ी रास्तों में खुले मैदानों का एक प्रकार से दर्शन दुर्लभ है !

कठिन चढ़ाई के बाद मैदान के दर्शन मिलने से चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। वह मैदान क्या था, प्रकृति-देवी का सुहावना लीला-क्षेत्र था। चारों ओर हरियाली-ही-हरियाली दिखाई पड़ती थी। हरी-हरी घासों के बीच-बीच लाल, पीले, बैजनी, उजले—नाना रंग के खिले हुए फूल उस लहलहे मैदान में एक विचित्र शोभा उत्पन्न कर रहे थे। मैं तो उस मैदान की मन-भावनी छटा देखकर 'निरपनियाँ' के मार्ग-कष्टों को एकदम भूल गया। मैदान में देवी का एक मंदिर भी सुशोभित है। अहा ! कैसा मनोहर मैदान था !



[ उजले पहाड़ी फूलों का निखरा हुआ सौन्दर्य ]

दो मील की उतराई का मार्ग तय करके हम 'गर्बेयांग' जा पहुँचे। 'बुद्दी' से 'गर्बेयांग' पाँच मील दूर है, और 'मालपा'

यहाँ से १२ मील है। यहाँ खच्चर, घोड़े, चँवरी गायें और बैल अधिकता से दिखलाई पड़ते हैं। यह एक बहुत सर्द जगह है। इसकी ऊँचाई बदरीनारायण-पर्वत से कहीं अधिक है। यहाँ से अल्मोड़ा १४१ मील पड़ता है। खैर, यहाँ पहुँचने पर 'गर्बेयांग-स्कूल' के हेड-पंडित और यहाँ के पोस्ट-मास्टर पंडित लक्ष्मीदत्तजी तथा श्रीरुमादेवीजी की बहन ने मेरा बड़ा सत्कार किया। यहीं मुझे अपने अनेक प्रेमियों के पत्र मिले, जिनके उत्तर में मैंने भी उन्हें अपना कुशल-मंगल लिख दिया।

३ जुलाई, ( सोमवार ) से ८ जुलाई ( शनिवार ) तक— 'गर्बेयांग' से आगे बढ़ने का मार्ग अत्यन्त कठिन है। मार्ग में 'लिपुधारा' पर बर्फ का अधिक जमाव होने के कारण रास्ता चलना कठिन है। 'कैलास' जानेवाले यात्री अपनी सुविधा के अनुसार 'ताकलाकोट' की मंडी होकर वहाँ जाते हैं। मंडी खुलने पर 'चौंदास' के धनाढ्य व्यापारियों के समूह भी 'ताकला-कोट' जाते हैं, जिससे इनके साथ चलने में यात्रियों को बड़ी सुविधा रहती है। ओवर्सियर-साहब की पार्टी तथा लाहौर-कालेज के प्रोफेसरों की पार्टी भी 'गर्बेयांग' होकर 'कैलास' अथवा 'मानस-सरोवर' जानेवाली थी। मैंने उचित समझा कि पाँच-छः रोज तक यहीं उनलोगों की बाट जोहता रहूँ, तबतक आगे का मार्ग भी बर्फ के गल जाने से बहुत-कुछ साफ हो जायगा, और अनेक सज्जनों के सहवास का भी आनन्द प्राप्त करूँगा।

'गर्बेयांग' में, दिन में, जोरों से सनसन हवा बहती है। लोग घर से बाहर, धूप में, कम्बल का कोट और पायजामा पहिने हुए, सर्दी का कष्ट मिटाते हैं। यहाँ के प्रेमियों की उदारता से मुझे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं झेलनी पड़ी। श्रीकल्याणसिंहजी, श्रीरुमादेवीजी की भगिनी और स्थानीय स्कूल के सेकंड-पंडित की कृपा से कम्बल और लोई का अभाव नहीं था। यहाँ के पटवारी श्रीदिलीपसिंहजी से मेरी भेंट हुई। मेरी कैलासयात्रा की अभिलाषा सुनकर उन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखाई। उस पहाड़ी प्रान्त में सर्दी से बचने के लिए उन्होंने मुझे एक खाल और एक चौकोर चश्मा दिया। 'ताकलाकोट' के समीप छोटे-छोटे कंकड़ उड़कर आँखों में पड़ जाते हैं, इसलिए चश्में की बड़ी जरूरत पड़ती है।

पहाड़ी हिस्सों में लाल पगड़ीवाले ( पुलिस, चौकी, थाने आदि ) नहीं दिखलाई पड़ते। यहाँ की देहातों में पटवारियों का ही राज्य है। अँगरेजी सरकार की ओर से लगान वसूल करने और पुलिसगिरी करने के लिए वे लोग वेतन पाते हैं। एक प्रकार से वे देहातियों के शासक हैं!

पहाड़ी प्रान्तों में 'गर्बेयांग' तक डाकघर का प्रबंध है। इसके आगे डाक नहीं है। मई से अक्टोबर तक 'व्यासपट्टी' के लोगों का 'गर्बेयांग' से लेकर 'ताकलाकोट' तक आना-जाना लगा रहता है। इसके बाद नवम्बर से, अधिक सर्दी के भय से, समस्त निवासी, डाक-विभाग तथा स्कूल-विभाग उठाकर

'धारचूला' चले जाते हैं। ऑक्टोबर में ही, तिब्बती हाकिम, 'लिपु' पार होकर, बड़ी धूमधाम से, लगान वसूल करने के लिए 'गर्बेयांग' की ओर आते हैं। व्यास-प्रान्त से १०००) सालाना और चौंदास-प्रान्त से १२ थान कपड़े 'कर' वसूल करते हैं। यदि कोई 'कर' देने में विलम्ब करता है, तो उस पर हाकिमों के कोड़ों की बौछार पड़ने लगती है ! ये लोग 'कर' में केवल रुपये ही नहीं लेते, बल्कि रुपये के बदले में गल्ला, लोहा, मांस, शराब, पूरी, लकड़ी, कोयला, घास, पुआल आदि भी लेते हैं। इन लोगों के 'कर' वसूल करने में अँगरेजी सरकार के कर्मचारी भी मदद करते हैं। इस प्रकार के लगान को लोग 'तिजारती कर' कहते हैं; परन्तु 'तिजारती कर' उन्हीं पर लगाया जा सकता है, जो व्यापारी हों; सब लोगों से 'तिजारती कर' वसूल करना एक प्रकार की धोखेबाजी है।

इधर के पहाड़ी प्रान्तों के शासक केवल एक ही हाकिम हों, सो नहीं—अँगरेजी सरकार, तिब्बती हाकिम तथा नैपाल-सरकार, तीनों ही यहाँ वालों से 'कर' (लगान) वसूल करने के अधिकारी बनते हैं। यहाँ वालों को लगान के सिवा समय-समय पर बेगार, कुली आदि भी देने पड़ते हैं !

इधर के अधिकांश निवासी भोटिये हैं। ये बड़े भलेमानस और भोले-भाले होते हैं। हमारे देश में अब स्वदेशी-आन्दोलन आरम्भ हुआ है; परन्तु भोटियों में स्वदेशी का भाव बहुत पहले से जागृत है। ये अपने यहाँ खुद कपड़े तैयार कर अपना

काम निकाल लेते हैं। किसी अदालत-फौजदारी की इन्हें जरूरत नहीं, ये स्वयं ही आपस के झगड़े का निपटारा कर लेते हैं। बड़े-बड़े झगड़े निपटाने के लिए इनके यहाँ पंचायतें हैं—उनमें बड़ी होशियारी से झगड़े फैसल किये जाते हैं—उनकी न्याय-चातुरी देखकर बड़े-बड़े जज और हाकिम भी चकित हो जाते हैं।

भोटिये बड़े परिश्रमी होते हैं। ये प्रति वर्ष तिब्बत में जाकर पाँच-छः मास तक व्यापारिक उद्योग करते हैं। आवश्यकता होने पर ये बम्बई, कलकत्ता आदि व्यापारिक स्थानों में भी आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के लिए जाते रहते हैं। 'गढ़वाल' वालों की अपेक्षा इनका जीवन सुखी है। इनके यहाँ अन्न का अभाव नहीं रहता। अपने उद्योग-बल से ये अपनी आवश्यकताओं की भरपूर पूर्त्ति कर लेते हैं। इनमें साधु-सन्तों के आदर-सत्कार का भाव भी अधिक होता है। गढ़वाल वाले तो अपना ही पेट भरते रहते हैं—अपने स्वार्थ के आगे उनमें परोपकार का भाव कम होता है!

परन्तु इन भोटियों में जहाँ अनेक सुन्दर गुण हैं, वहाँ इनमें अनेक घिनौनी बुराइयाँ भी हैं। इनमें शराब का दौरदौरा अधिक रहता है। मांस-भक्षण के भी ये बड़े आदी होते हैं। सबसे बड़ी बुराई जो इनके समाज में प्रचलित है, वह 'राम-बंग' की प्रथा है। इस निन्दनीय प्रथा के विषय में आगे चलकर कुछ विस्तार से लिखना आवश्यक है।

× × × ×

'राम-बंग' की प्रथा भोटिया-समाज का भयंकर कलंक है। भोटियों के हर-एक गाँव में एक ऐसा मकान होता है, जिसमें नौजवान स्त्री-पुरुष रोज रात को आपस में मिलते-जुलते और हँसते-बोलते हैं। यह मकान एक प्रकार का 'क्लब' ( गोष्ठी ) होता है ! इसमें परस्पर सखा-सहेली चुनकर दिल बहलाया जाता है, शराब की छूट होती है, हिल-मिलकर नाचा-गाया जाता है। नतीजा बुरा होता है। लोग-लुगाइयों की अनुचित स्वतंत्रता से समाज में भ्रष्टता फैलती है।

असल में इस प्रथा का मूल उद्देश्य यह था कि विवाह की इच्छा रखनेवाले स्त्री-पुरुष एक जगह जमा होकर अपनी पसंद के मुताबिक अपनी जोड़ी चुन लें—स्त्री अपने मन के माफिक पुरुष, और पुरुष अपनी रुचि के अनुसार स्त्री। किन्तु फल उलटा हो गया। कोई नियम या पाबन्दी न रही—मनमानी-घरजानी होने लगी। अच्छा तो यह होता कि विवाह के अभिलाषी जितने युवा स्त्री-पुरुष एकत्र होते, उनके माता-पिता भी वहाँ उपस्थित रहते, और दोनों के माता-पिता अथवा संरक्षक की आँखों के सामने ही चुनाव होता। प्राचीन समय के स्वयंवरों में प्रायः ऐसा ही होता था कि दोनों ( वर और कन्या ) पक्ष के बड़े-बूढ़े लोगों के सामने ही वर के गले में कन्या जयमाल पहनाती थी। उसी पुरानी प्रथा की यह भद्दी नकल है ! इसमें किसी प्रकार के आदर्श अथवा मर्यादा का विचार नहीं रक्खा गया है। इसलिए इसमें सुधार की बड़ी आवश्यकता है।

कुछ पढ़े-लिखे भलेमानस भोटियों का ध्यान इस निन्दनीय प्रथा को दूर करने की ओर गया है; परन्तु तब भी यह कुरीति जोर पकड़ रही है।

भोटियों में एक और बड़ी घृणित प्रथा है। वे सदा अपने साथ ट्रंकों या बक्सों में मांस रक्खे रहते हैं। एक दिन का भेड़ या बकरी का मांस डेढ़ वर्ष तक रखते हैं! जब जरूरत पड़ती है, खाते हैं! सर्द-पहाड़ी जगहों में मांस के सड़ने-गलने का डर नहीं रहता। फिर भी, यह जंगली प्रथा अत्यन्त घृणित है। अगर यह कहा जाय कि पहाड़ी देशों में मांस खाये बिना रहना कठिन है, तो बदरीनारायण और केदार-गंगोत्तरी के निकट रहने वाले लोग क्या ठंडे पहाड़ी देश के रहनेवाले नहीं हैं? पर वे तो बिना मांस खाये ही भोटियों से कुछ कम हट्टे-कट्टे नहीं हैं।

फिर, इसके सिवा, भोटियों में चाय का भी खूब चलन है। उनकी चाय में दूध-चीनी के बदले घी और नमक मिलाया जाता है! वे चाय के प्याले से ही अतिथि का सत्कार करते हैं; क्योंकि हम लोगों की तरह उन्हें पान-सुपारी सुलभ नहीं है। कपड़े-लत्ते पहनने में भी वे बड़े शौकीन होते हैं। पुरुष सदा कोट, वेस्टकोट, पतलून, मोजे आदि पहने रहते हैं और स्त्रियाँ बढ़िया-से-बढ़िया ऊनी वस्त्रों का घँघरा, चुस्त कुर्ती, कनटोप, दोकचा ( घुटने तक का ऊनी जूता ) पहना करती हैं।

किन्तु कपड़े की शौकीनी के साथ-साथ उनमें सफाई की आदत नहीं होती। वे स्नान से बहुत दूर भागते हैं। यद्यपि वे

एक प्रकार के छत्री हैं; पर उनमें जनेऊ की चाल नहीं है। अनेक बातों में सनातन-धर्म से वे भिन्न हैं। श्राद्ध आदि में तिब्बत के 'लामा' उनके पुरोहित होते हैं।

× × × ×

'गर्बेयांग' से आगे कैलास जाने के मार्ग बड़े कठिन हैं। यहाँ ( गर्बेयांग ) से कई जरूरी चीजों की तैयारी करके लोग आगे बढ़ते हैं। 'लिपु' की चोटी यहाँ से २१ मील है, और ताकलाकोट-मंडी 'लिपु' के उस पार—तिब्बत में—यहाँ से २८ मील की दूरी पर—है। 'गर्बेयांग' से 'लिपु' की चोटी तक बराबर चढ़ाई का सामना करना पड़ता है। मार्ग ऐसा कठिन है कि कुली बोझ लेकर चल नहीं सकते। यही नहीं, बल्कि बिना बोझ वाले छरीदे यात्री भी पैदल आगे बढ़ने में हिम्मत हार जाते हैं। ऐसी अवस्था में लोग गर्बेयांग से झब्बु, चँवरी गाय, खच्चर अथवा घोड़े की सवारी द्वारा रास्ता तय करते हैं। ये पशु थोड़े ही किराये में आसानी से सवारी के लिए मिल जाते हैं। और-और लोगों की भाँति मैंने भी पाँच रुपये में सवारी के लिए एक घोड़ा और पाँच ही रुपये में माल-असबाब ढोने के लिए चँवरी गाय किराये पर ठीक कर ली।

यहाँ से ताकलाकोट-मंडी तक, और ताकलाकोट से मानस-सरोवर-कैलास तक, खाने-पीने की चीजें नहीं मिलतीं। ईन्धन का भी अभाव है। इसलिए ईन्धन और खाद्य-पदार्थों का प्रबन्ध भी लोग यहीं ( गर्बेयांग ) से कर लेते हैं। कुछ लोग तो खाने

के लिए आटा, घी और शक्कर द्वारा 'गुड़-पापड़ी' बनाकर रख लेते हैं। अधिकांश लोग तो जौ या गेहूँ का सत्तू ही पास रखते हैं। जो हो, खाने-पीने का सामान—घी, चावल, गुड़, नमक, मसाला, आँटा आदि का प्रबंध—यहीं (गर्बेयांग) से किया



[ चँवरी गाय और झबरा बैल ]

जा सकता है। जो लोग धनाढ्य हैं, वे रुपया खर्च करके झब्बुओं के ऊपर लकड़ियाँ भी लादकर ले जाते हैं; क्योंकि गर्बेयांग से ११ मील के आगे—'कालापानी' ग्राम से—ईन्धन का प्रबन्ध करना कठिन है। हाँ, तिब्बत में कहीं-कहीं एक प्रकार की

घास होती है, जिसे लोग कठिनाई से जलाकर भोजन बनाते हैं; परन्तु बहुत-से लोग इन झंझटों में नहीं फँसते—खाने के लिए केवल सत्तू और गुड़ अपने साथ रखकर झंझटों से छुटकारा पा जाते हैं। फिर, गर्बेयांग से आगे साग-भाजियों के भी दर्शन नहीं होते—'भोट' ( गर्बेयांग ) में भी नहीं! हाँ, 'भोट' में मूली खूब होती है, जिसे यात्री अपने साथ ले जा सकते हैं।

खाद्य-पदार्थों के अतिरिक्त साथ में थोड़ी खटाई और 'वैसलिन' ( एक चिकना सुगंधित लेप ) रख लेना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि 'लिपुधूरा' पार करते समय सख्त सर्दी से जब मुँह फटने लगता है, तब यही 'वैसलिन' ( मरहम ) काम देता है। इतना ही नहीं, तिब्बत जानेवालों को अपने साथ एक तिब्बती भाषा समझनेवाले दुभाषिया को भी साथ रखने की जरूरत पड़ती है। हमारे साथियों ने तो २५) मासिक पर एक ऐसे ही दुभाषिया को ठीक कर लिया, और दूसरे दिन—६ जुलाई को—गर्बेयांग से कूच करने के लिए हम लोग हर तरह से तैयार हो गये।

६ जुलाई, रविवार—छः रोज तक बाट जोहने पर भी लाहौर-कालेज के प्रोफेसरों का दल गर्बेयांग न आ सका। किन्तु ओवरसियर-साहब का दल आ चुका था; इसलिए हम उन्हीं के साथ गर्बेयांग से आगे चल पड़े। गर्बेयांग से चलते समय हम लोगों ने अपने साथ बंदूक भी रख ली थी; क्योंकि तिब्बत में डाकुओं का अधिक खतरा रहता है। साथ में उपयोगी शस्त्र होने से जान-माल की रक्षा में सुगमता रहती है।

गर्बेयांग से आध मील का कठिन उतार पार करने के बाद नैपाल-राज्य होकर जाने के लिए रास्ता मिला। फिर दो मील की चढ़ाई पार करने के बाद एक चौड़ा मैदान मिला। और, इससे आगे बढ़ने पर पुन: 'काली'-नदी के दर्शन हुए। इसके बाद, 'काली'-नदी से आगे, अँगरेजी राज्य का मार्ग पकड़कर, हम नैपाल-राज्य से 'तिलसी' नामक एक मैदान में जा पहुँचे। 'तिलसी' से 'कालापानी' सिर्फ एक मील दूर है। 'तिलसी' एक लम्बा-चौड़ा खुला मैदान है। इस कारण यात्री अकसर यहीं पर विश्राम करते हैं। हमलोग जब यहाँ पहुँचे, तब देखा कि अनेक भोटिये अपनी-अपनी भेड़-बकरियाँ लिए यहाँ पर डेरा डाले हुए थे। यह स्थान गर्बेयांग से १० मील की दूरी पर पड़ता है। हम लोगों ने भी यहीं पर एक छोलदारी में रात बिताई। यहाँ एक छोटा-सा—दो-एक मनुष्यों के रहने लायक—मकान है। कहा जाता है कि किसी आकस्मिक घटना के उपस्थित होने पर लोग इसी मकान में शरण लेते हैं। हमारे साथियों के भोजन बनाने आदि का प्रबन्ध इसी मकान में हुआ।

तिलसी में पानी के एक सोते के भी दर्शन हुए। लोग इसे 'कालीगंगा' कहते हैं, और यह नैपाल की घाटी की ओर से निकलकर—पहाड़ों के नीचे-नीचे बहता हुआ—इस तरफ आया है। लोगों में यह बात प्रचलित है कि नैपाल में यदि कोई एक फूल इस सोते में छोड़ दे, तो बिना किसी रुकावट के वह फूल 'तिलसी' में ही आकर प्रकट होगा! जो हो, तिलसी

तक जलाने के लिए लकड़ियाँ मिल जाया करती हैं। इसके आगे लकड़ी का मिलना कठिन है!

'तिलसी' के मैदान में रात्रि के समय छोलदारी में बैठे हुए हम एक अपूर्व आनन्द का अनुभव कर रहे थे। साफ और खुले लम्बे-चौड़े मैदान में उज्ज्वल चाँदनी बड़ी ही मनोहर मालूम पड़ती थी। पास ही सोते का निर्मल जल भी, सफेद बर्फ से ढँका होने के कारण, चन्द्रमा के प्रकाश में खूब झलमला रहा था। हम लोग प्रकृति-देवी के परम रमणीय लीला-क्षेत्र में बड़ी ही शान्ति के साथ शुद्ध आनन्द का स्वाद ले रहे थे। सचमुच वह रात्रि बड़े आनन्द की रात्रि थी!

× × × ×

१० जुलाई, सोमवार—प्रातःकाल हम लोगों ने स्नानादि क्रिया से निबटकर भोजन किया, और 'तिलसी' से आगे बढ़े। तिलसी से चार मील की दूरी पर 'कालापानी' नामक गाँव है। यहाँ कोई बस्ती नहीं है—गर्बेयांग वालों की यहाँ पर कुछ खेती-बारी है, अतः वे ही लोग कभी-कभी आकर यहाँ पर निवास करते हैं। ठहरने के लिए जमीन से तीन-चार हाथ ऊँचे, पत्थर के, दो-तीन साधारण मकान बने हुए हैं। इस पर कोई छत भी नहीं है। पत्थर के टुकड़ों के ढेर लगाकर दीवारें तैयार की गई हैं। यात्रियों की सुविधा के लिए दो-एक अच्छे मकान भी हैं।

कालापानी से आध मील के बाद एक पहाड़ी झरना पार कर 'यारखा' पहुँचे, जहाँ से चढ़ाई आरम्भ करनी पड़ती है।

चार मील के बाद 'चिल्ल' नामक एक स्थान मिलता है। 'यारखा' अथवा 'चिल्ल' कोई बस्ती या ग्राम नहीं है; पर एक छोटी-सी धर्मशाला है। एक मील आगे बढ़ने पर 'डुंगकांग' में एक ऐसी ही धर्मशाला और मिलती है। यहाँ के आसपास की जमीन पथरीली है। इसी लिए लोग इसे 'डुंग-कांग'—अर्थात् 'पथरीली जगह'—कहते हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए यहाँ भी थोड़ी सुविधा है। फिर इससे आध मील दूर, बीच में, 'डुंग-कांग' नाम का एक स्थान और मिलता है। यह स्थान कुछ बड़ा और अधिक यात्रियों के ठहरने योग्य है। यहाँ से आध मील की दूरी पर, 'मल्ली-डुंग-कांग' नाम का, यात्रियों के ठहरने के लिए, एक और भी मामूली टिकाव है।

इधर मार्ग में अनेक तरह की जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं। रास्ते का प्राकृतिक दृश्य मनोहर है। हम लोगों ने इधर कहीं विश्राम करना या डेरा डालना उचित नहीं समझा। कारण, हम लोग एक ऐसे विश्राम-स्थान पर ठहरने की धुन में थे, जहाँ से दूसरे दिन प्रातःकाल—आठ बजे तक—'लिपुधूरा' पहुँच जायँ, नहीं तो प्रातःकाल के बाद 'लिपुधूरा' पार करना कठिन हो जाता।

सायंकाल, पाँच बजे के करीब, हम लोगों ने 'सामचिंग' नामक स्थान पर अपना डेरा डाला। 'सामचिंग' तिलसी से आठ मील के फासले पर है। यहाँ कोई बस्ती या ठहरने के लिए धर्मशाला नहीं है। यह एक सफाचट लम्बा-चौड़ा मैदान

है। इसके पास ही बर्फ से ढँका हुआ एक पहाड़ है—दूसरी तरफ एक मुंडमुंड-पर्वत और दिखाई पड़ता है। यह स्थान समुद्र-तल से १४,६२० फीट की ऊँचाई पर है। एक प्रकार से यहीं तक हिमालय-पर्वत की सीमा का अन्त समझिये।

सामचिंग से 'लिपु' तक एकदम सुनसान और उजाड़ है। इधर का दृश्य भयावना मालूम पड़ता है। अत्यन्त बर्फ गिरने के कारण इस तरफ हरियाली या साँप-बिच्छू का नाम नहीं है। 'यारखा' से सामचिंग तक रास्ते में बड़े-बड़े रोड़े मिलते हैं। कई जगह ऊपर से लुढ़ककर पत्थरों के गिरने का भय बना रहता है। इस मार्ग में बड़ी सावधानी की जरूरत है। 'गर्बेयांग' से सामचिंग तक १८ मील की चढ़ाई मिलती है।

'सामचिंग' पहुँचने पर सर्दी की अधिकता के कारण कपड़े ओढ़कर मैं खीमे के अन्दर बैठ रहा। यहाँ की सर्दी गजब की सर्दी थी! भूख लगने पर भी मुझे इतनी हिम्मत नहीं हुई कि कपड़े से बाहर हाथ निकालकर कुछ खाऊँ! यहाँ से कल हिमालय की आखिरी चोटी 'लिपुलेक'-घाटी लाँघनी है, जो सामचिंग से तीन मील पर पड़ती है। रात को मन में यही विचार होता रहा कि 'लिपु'-घाटी में कैसी बीतेगी!

'लिपु' की चढ़ाई आरम्भ करने से पहले पूरी तैयारी की आवश्यकता है। कुछ रात रहते—सूर्योदय से पूर्व—ही 'धूरा' काट लेना चाहिये, जिससे सूर्य निकलते-निकलते 'लिपु' की चोटी पर पहुँच जायँ। सूर्योदय के समय इन धूरों पर तेज हवा

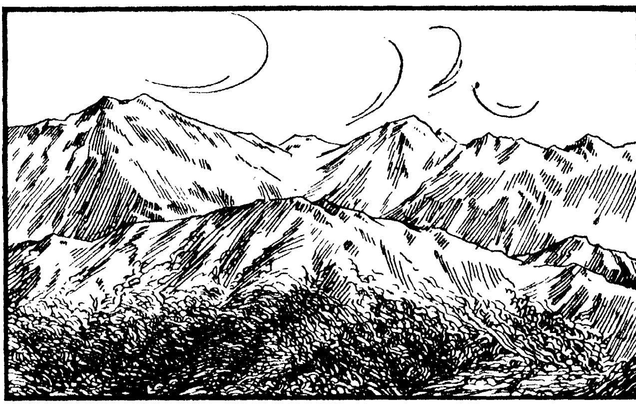
चलने लगती है, जिससे सर्दी की प्रबलता बढ़ जाती है—अंग-अंग ठिठुर जाता है। उस दशा में कदम उठाना महा कठिन हो जाता है। 'लिपु' पर चढ़ने से पूर्व अंग-अंग ऊनी वस्त्रों से ढँक लेना चाहिये! यदि कोई अंग न ढँका जा सके, तो उस स्थान पर 'वेसलिन' अथवा कत्था पीसकर लगा लेना चाहिये। ऐसा करने से अंगों के चमड़े सर्दी से फट नहीं पाते। पहाड़ों पर—अधिक ऊँचाई पर पहुँचने पर—श्वास-संचालक वायु का अभाव हो जाता है, इसलिए बार-बार दम फूलता है—सिर में चक्कर आ जाता है—बेहोशी तक आ जाती है। ऐसी चढ़ाइयों में गोल-मिर्च, मिसरी, खटाई आदि का उपयोग अत्यावश्यक है।

× × × ×

११ जुलाई, मंगलवार—'लिपुधूरा' के लिए हम लोग सूर्योदय से दो घंटे पूर्व ही चले। भोटियों और झब्बु वालों में, चलने से पहले, शराब का खूब दौरदौरा रहा। उन लोगों का विश्वास था कि ऐसा करने से पर्वत की ऊँची चढ़ाई में कष्ट नहीं होगा और हम आसानी से पहाड़ी चोटी पार कर लेंगे।

पर्वत की चढ़ाई आरम्भ हो गई। मैं कुछ दूर तक घोड़े पर गया; परन्तु बर्फ़ों के ढेर ज्यों-ज्यों अधिक मिलते गये, घोड़ा आगे बढ़ने में असमर्थ होता गया। कारण, बर्फ़ों के ढेर में उसके पैर धँस जाने से वह गिर पड़ता था। उसके गिरने के साथ ही एक स्थान पर मैं भी गिर पड़ा; किन्तु किसी प्रकार की चोट नहीं आई। उस बर्फ़ीले रास्ते का आनन्द भी विचित्र

ही था। बर्फ पर चल क्या रहे हैं, मानों धुनी हुई रुई के ढेर पर आनन्द-पूर्वक विचर रहे हैं! जिधर ही दृष्टि जाती है, उधर बर्फ से ढँके पर्वतों के झुंड दिखलाई पड़ते हैं! मैं कभी



[ बर्फीले पहाड़ ]

धुनी रुई के ढेर के समान जमी हुई बर्फ पर पैदल दौड़ता और फिर गिर पड़ता, तथा पुनः आवश्यकतानुसार घोड़े पर सवार हो जाता था। रास्ते में बड़ा आनन्द मिलता था; परंतु फिर भी यह चढ़ाई बड़ी विकट है!

यों तो मैंने अपने सम्पूर्ण अंग वस्त्रों से ढँक लिये थे; परंतु गलती से दस्ताना लेना भूल गया, और हाथ में 'वेसलिन' भी नहीं लगाया; इसलिए अधिक सर्दी पाकर हाथ के चमड़े फट गये और खून बह निकला! इससे हाथ की अँगुलियाँ निर्बल पड़ गईं, और हाथ से लट्ठ छूट पड़ा! पहाड़ी रास्तों में सफर

करते समय हाथ में एक लट्ठ रखना जरूरी होता है। इससे रास्ता तय करने में बड़ी मदद मिलती है। खैर, हाथ से खून बहने के साथ ही कलेजे में कँपकँपी भी शुरू हो गई; इसलिए मैंने दो-चार गोलमिर्च खाकर उसे दबाया। अधिक ऊँचाई पर पहुँचने पर पाँव बोझ-से मालूम पड़ने लगते हैं—एक-एक कदम पर पाँच-पाँच मिनट का विश्राम लेना पड़ता है। मेरे कितने ही साथी श्वास-संचालक वायु के अभाव से चक्कर खाने लगे, और कितने ही तो गिरने लगे; परंतु फिर भी वे किसी-न-किसी प्रकार आगे बढ़ते ही चले गये। मुझे तो केवल शीत ने सताया; और किसी प्रकार के कष्ट का मुझे सामना नहीं करना पड़ा। और, मेरे पीछे-पीछे जो ओवर्सियर-साहब आ रहे थे, वे भी प्रसन्नता-पूर्वक—मस्तानों की भाँति—अपनी चढ़ाई तय कर रहे थे। पर्वतों के विकट पथ में, साथी होते हुए भी, कष्ट की दशा में, कोई किसी का सहायक नहीं होता! यहाँ तक कि परस्पर बातचीत भी नहीं हो पाती! पहाड़ के यात्रियों को स्वयं अपनी ही सुधि-बुधि नहीं रह जाती।

'अस्कोट' से चलते समय मैंने सुन रक्खा था कि जो लोग तम्बाकू, गाँजा-भाँग, सिगरेट आदि नशीली वस्तुओं के आदी होते हैं, उन्हें बर्फीले पर्वत की चढ़ाई में अधिक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। मैंने अपने जीवन में कभी किसी प्रकार की नशीली वस्तु का सेवन नहीं किया है। यही कारण है जो मुझे 'लिपु' की चढ़ाई में अधिक दुर्दशा नहीं भोगनी पड़ी।

सचमुच लोगों की शारीरिक निर्बलता का एक प्रधान कारण विष-युक्त नशीली वस्तुओं का सेवन है। 'विष' का मनुष्य-जीवन पर कितना बुरा प्रभाव पड़ सकता है, इसका विचार हमारे पढ़े-लिखे भाई बड़ी आसानी से कर सकते हैं। परन्तु दुःख की बात तो यह है कि पढ़े और बे-पढ़े—दोनों ही—पाकेट के पैसे खर्च कर, जान-बूझकर, क्षणिक मनोविनोद के लिए, इन्हीं विषैली-नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं। पैसे देकर विष खरीदना पागलपन के सिवा और क्या कहा जा सकता है? जो पैसे नशीली वस्तुओं के पीछे खर्च होते हैं, यदि उनका व्यय पौष्टिक पदार्थों—दूध, घी, अन्न, फल आदि—के उपयोग में होता, तो इनके द्वारा हमारे चित्त और शरीर को कुछ स्थायी तथा वास्तविक लाभ भी पहुँचता।

जो हो, साढ़े सात बजते-बजते हम लोग 'लिपु-लेक' की सबसे ऊँची—१७,८१० फीट ऊँची—चोटी पर पहुँच गये। यहाँ पर भारतवर्ष की सीमा समाप्त होती है। यहीं से एक बार अपनी दृष्टि भारतमाता की ओर फेंककर हम आगे बढ़ते हैं। हिमालय के ऊँचे शिखर पर खड़े होकर हम विशाल भारत के दर्शन कर लेते हैं। यहाँ पर यह देखकर बड़ी पीड़ा होती है कि यहाँ के भोटिये और अन्य पहाड़ी लोग भारतीय भाव में पगे हुए नहीं हैं—वे अपने को भारतवासी नहीं समझते; भारतीय कहलाने में उन्हें लज्जा मालूम होती है! वे अपने को स्वतंत्र समझते हैं! तब भला पराधीन मनुष्यों से वे कैसे

दिल खोलकर हिलें-मिलें ! मैं इसी विचार-तरंग में डूबता-उतराता रहा; तबतक मेरे और-और साथी आगे बढ़ गये। फिर मैं भी तेजी से आगे बढ़कर उनके साथ हो गया।

'लिपु' का धूरा अन्य धुराओं की अपेक्षा सुगम कहा जाता है। यहाँ की ऊँचाई १७,६१० फीट है। 'नीती' के धूरे की ऊँचाई १७,८६० फीट है। इन तीनों धुराओं को पार करके ही लोग भारतीय हिमालय समाप्त कर तिब्बत में प्रवेश कर सकते हैं। 'बद्रीनारायण' जानेवाले लोग 'नीतीधूरा' होकर और 'दारमाघाट' जानेवाले लोग 'ऊँटाधूरा' होकर जाते हैं। 'लिपु' की चोटी अलमोड़ा से १६२ मील पर है।

मैं लड़कपन में भूगोल में पढ़ा करता था कि हिमालय-पर्वत २०० मील चौड़ा है—इस बात की सत्यता का पता भी इस यात्रा से लग गया।

काठगुदाम से मैंने हिमालय की यात्रा आरम्भ की—वहाँ से अलमोड़ा ३६ मील और अलमोड़ा से लिपुधूरा १६२ मील ! 'लिपुधूरा' की चोटी के बाद तिब्बत में प्रवेश करने के लिए उतराई का मार्ग मिलता है। डेढ़ मील की उतराई के बाद कुछ चौरस भूमि मिलती है। लिपु की उतराई घोड़े की सवारी द्वारा नहीं तय की जा सकती; क्योंकि इस उतराई में हमें अधिक दूर तक बर्फ ही मिलती है—फिर बाद को रोड़े और पत्थरों से भरा हुआ रास्ता मिलता है। किन्तु डेढ़ ही मील तक कँकरीले और पथरीले मार्ग पर चलने के बाद

अत्यंत सुविधा-जनक मार्ग मिल जाता है। तिब्बत की ओर न काली-नदी का घोर गर्जन है, न पहाड़ों से टूट-टूटकर चट्टानों के गिरने का भयानक दृश्य। तिब्बत यद्यपि एक पहाड़ी देश है, तथापि यह एक बड़ी चौरस पथरीली भूमि पर बसा हुआ है।

'लिपु' की चोटी के ४ मील बाद हम लोग 'पाला' नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ मुसाफिरों के ठहरने के लिए केवल एक साधारण-सी धर्मशाला है—कोई दूकान या किसी प्रकार की बस्ती नहीं। यहाँ से 'ताकलाकोट' ६३ मील है। रास्ता अच्छा है; सर्दी का कष्ट नहीं; पर धूप की प्रचंडता है। इधर धूल और कंकड़ों के उड़कर आँखों में पड़ने का भय रहता है। ऐसे अवसर पर वह चोपहल चश्मा काम देता है। ज्यों-ज्यों हम 'पाला' से आगे बढ़ते जाते हैं, सभी पिछले पहाड़ अदृश्य होते चले जाते हैं—दूर से देखने पर वे छोटे-छोटे मालूम पड़ते हैं। इधर हरियाली कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती!

मार्ग के आनंद का अनुभव करते हुए हम लोग दो बजे 'ताकलाकोट' जा पहुँचे। इस प्रकार हम नव घंटे में 'सामचिंग' (शामचीन) से 'ताकलाकोट' आये। गर्बेयांग से ताकलाकोट २८ मील है। कालापानी और ताकलाकोट के बीच में वृक्षों तथा लकड़ियों के दर्शन नहीं होते! 'ताकलाकोट' एक प्रसिद्ध मंडी है। भोटिया लोग जुलाई (असाढ़) के महीने में यहाँ आ-आकर ४—५ महीने तक व्यापारिक कारबार करते हैं। इसी लिए यह 'मंडी' के नाम से मशहूर है। यहाँ सभी भोटिये मकान

की मामूली दीवार खड़ी कर उस पर कपड़े की छत तान देते हैं—बस, उनके रहने के लिए एक मकान तैयार हो जाता है ! हम लोगों को भी, ठहरने की जगह के लिए, कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा; क्योंकि श्री खड्गसिंह हम लोगों से पहले ही 'ताकलाकोट' पहुँच चुके थे। मैं तो, पहुँचने के बाद, भोजन से निश्चिन्त होकर, 'ताकलाकोट' के निवासी हूणियों, लामाओं तथा 'जोहार' के भोटियों से बातचीत करता रहा—इसका पूरा विवरण मैं दूसरे दिन की डायरी में आगे दूँगा; बड़ा ही मनोरंजक है !

♣

# पंचम सोपान

## लामाओं के देश में

१२ जुलाई (बुधवार) से १३ जुलाई (वृहस्पतिवार) तक—

हम ताकलाकोट पहुँचकर वहाँ दो रोज ठहरे। इतने समय में हमने तिब्बत-निवासियों के चाल-चलन, आहार-व्यवहार आदि का थोड़ा-बहुत परिचय प्राप्त किया।

'कर्नाली'-नदी के तट पर गुरुला-मानधाता-पर्वत के नीचे ताकलाकोट स्थित है। उसकी मंडी में, जुलाई से नवम्बर तक, खूब व्यापारिक कारबार होता रहता है। व्यास और चौंदास के भोटिये गेहूँ, चावल, मसूर, जौ, गुड़ इत्यादि अपने साथ लाकर मंडी में तिब्बतियों के हाथ बेचते हैं और यहाँ से नमक, ऊन, चँवर, सुहागा इत्यादि चीजें खरीदकर ले जाते हैं।

ताकलाकोट को एक प्रकार से कमिश्नरी समझिये। यहाँ 'जोगपन' नाम के तिब्बती हाकिम रहते हैं। इनके रहने का प्रबन्ध एक ऊँचे पर्वत पर किले में है। इस किले के दो हिस्से हैं। एक हिस्से में 'जोगपन' हाकिम अपने बाल-बच्चों सहित रहते हैं और दूसरे में 'लामा' अपने चेलों के साथ।

तिब्बत-राज्य 'लामा' लोगों के अधिकार में ही है। कहा जाता है कि किसी समय तिब्बत पर चीन के शासकों का दखल था; किन्तु उन्होंने तिब्बत-प्रान्त में मानस-सरोवर, कैलास आदि

जैसे उत्तमोत्तम तीर्थस्थान देखकर इस तीर्थ-भूमि पर शासन करना पाप समझा, और तब से यह देश लामाओं के हाथ सौंप दिया गया है !

लामा लोग एक प्रकार के गुरु अथवा आचार्य कहलाते हैं। लोग इनको बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं—इनकी पूजा भी करते हैं। तिब्बत के बड़े लामा 'दलाई-लामा' कहलाते हैं। वे 'लासा' में रहते हैं। 'लासा' ताकलाकोट से ८०० मील पर है ! दलाई-लामा अपने राज्य का प्रबन्ध अपने कर्मचारियों द्वारा करते हैं। ये कर्मचारी भी लामा ही होते हैं। इसलिए प्रजा अपने लामा-हाकिमों को ईश्वर-तुल्य समझती है।



[ तिब्बती साधु 'लामा' ]

यहाँ के निवासी 'हूणिये' होते हैं। हाकिमों के चलते तिब्बती प्रजा को किसी प्रकार की मुसीबत नहीं झेलनी पड़ती। जिस

प्रकार प्रजा का प्रेम लामा-हाकिमों पर होता है उसी प्रकार लामा-हाकिम भी प्रजा पर अनुराग रखते हैं। प्रजा जब चाहे, विना किसी रोक-टोक के, हाकिमों के पास जाकर अपने दुखड़े सुना सकती है।

तिब्बती प्रजा सदैव हथियार बाँधे रहती है। लामा-हाकिम प्रजा के कष्टों को बड़े गौर से सुनते हैं; उनसे मिलने में किसी प्रकार की आनाकानी नहीं करते। वे खुशामद-पसंद नहीं होते।

अब, थोड़ा ताकलाकोट का भी हाल सुनिये। यहाँ दिन में भी अच्छी गर्मी रहती है। इन दिनों—श्रावण में—मुझे फागुन का आनन्द मिलता था। इधर मटर के कुछ लहलहाते खेत देखने में आये। तिब्बत में वर्षा कम होती है—इतनी भी नहीं होती कि उससे खेतों की सिंचाई का काम निकाला जा सके। हाँ, नहरों द्वारा कठिनाई से सिंचाई का काम निकालकर जौ और मटर की खेती कर लेते हैं। यहाँ पर तो खेती का कुछ नाम भी है, ताकलाकोट के ऊपर तो वह भी नहीं!

यहाँ के मकान भी विचित्र ढंग के होते हैं। मकानों की दीवारें लोग पत्थर के रोड़ों से तैयार करते हैं। छत ढँकने के लिए ऊपर घास-फूस बिछा देते हैं। ऐसे मकानों में बहुत छोटे-छोटे दरवाजे होते हैं। यहाँ का बड़ा-से-बड़ा दरवाजा हमारे यहाँ की खिड़कियों के बराबर होता है।

इस तरफ गुफाएँ अधिक हैं। ये गुफाएँ पहाड़ की चट्टानों में सुरंग की तरह नहीं हैं। जिस प्रकार हमारे यहाँ की नदियों

के करारों में सुरंग खोदकर कोई-कोई जानवर अपनी माँद बनाते हैं, बस उसी प्रकार इधर कर्नाली-नदी के करारों में लोग सुरंगें खोदकर अपना निवास-स्थान बनाते हैं। इसी प्रकार के सुरंगों में निवास करते हुए बहुत-से लोग देखने में आये।

पत्थर के रोड़ों से तैयार किये गये मकान बाहर से देखने में भद्दे मालूम पड़ते हैं, पर उनकी खूबी भीतर घुसने पर ही मालूम पड़ती है। लोग अपने-अपने मकानों को गर्मी में सर्द और जाड़े में गर्म रखते हैं।

कर्नाली के किनारे की गुफाओं के बारे में यह खयाल पैदा होता है कि किसी जमाने में ये बौद्ध-भिक्षुओं के निवास-स्थान थे, और आज भी ज्यों-के-त्यों अत्यंत सुदृढ हैं।

भोटिये व्यापारी अपने मकानों की दीवारें पत्थरों की खड़ी कर उन पर कपड़े की छत डाल लेते हैं। फिर अपना काम समाप्त कर, मंडी से बिदा होते समय, छत के कपड़े उतारकर रख लेते हैं। चूँकि इधर वर्षा का अभाव है—कभी-कभी झींसी-बूँदी हो जाती है, इसलिए कपड़ों की छत से ही काम चल जाता है।

यहाँ किले में जाकर हम लामा-गुरु और जोगपन-साहब से मिले। एक दुभाषिये के द्वारा उनसें कई आवश्यक बातें हुईं। लामाओं का खयाल है कि जब कोई लामा मरेगा, तब फिर वह लामा होकर ही जन्म लेगा। इस सम्बन्ध की एक बात बड़ी

मनोरंजक है। जब किसी के घर कोई लड़का पैदा होता है, तब उसकी चालढाल देखकर लोग उसे—किसी तत्काल मरे हुए लामा का—अवतार कहने लगते हैं। जब लड़का दो-तीन वर्ष का होता है, तभी से वह कहने लगता है—'मैं पहले जन्म में अमुक लामा रहा हूँ—फलाँ जगह, फलाँ गुफा में रहता था।' यही नहीं, बल्कि वह मृत लामा की कई वस्तुओं के नाम भी बतलाने लगता है!!!

बालक के कथन की सत्यता का पता लगाने के लिए लोग परीक्षा करते हैं। आसपास के हूणियों के बर्तन, कपड़े, भेड़-बकरी आदि चीजें मृत लामा की वस्तुओं में मिलाकर रख देते हैं, और बालक से कहा जाता है कि तुम अगर पूर्व लामा के अवतार हो, तो इसमें तुम्हारी पहले की जो चीजें हों, उन्हें निकाल लो। सचमुच बालक उन्हीं चीजों को उठा लेता है, जो पूर्व लामा के काम में आती थीं! बस, बालक का यह चमत्कार देखकर लोगों को दृढ़ विश्वास हो जाता है कि यह पूर्व लामा का ही अवतार है—अपना पुराना चोला छोड़कर लामा ने यह नया चोला पाया है! इस विश्वास के अनुसार लोग उस बालक को उसी मृत लामा की जायदाद और पद का उत्तराधिकारी बनाकर, छोटी उम्र से ही, मृत लामा के घर छोड़ आते हैं!

इस प्रकार का विश्वास कहाँ तक सत्य है, पाठक ही स्वयं विचार कर लें। परन्तु मेरा विचार तो यह है कि लड़के को पहले से सिखाने-पढ़ाने का ही यह परिणाम है कि वह मृत

लामा की चीजों को पहचान लेता है। शायद कुछ स्वार्थी जन, अपने को सुखी एवं अपने बच्चों को लामा बनाने के लिए, बड़ी होशियारी से बालक को पहले ही सिखा-पढ़ा लेते हैं !

× × × ×

हूणियों में विवाह की प्रथा भी बड़ी ही मनोरंजक है। भोटियों की भाँति हूणियों में 'राम-बंग' की प्रथा नहीं है। प्रायः सभी हूणिये २०—२५ वर्ष की अवस्था में शादी करते हैं। शादी करनेवाला पुरुष अपने घर से काठ की बोतलों में शराब भर-कर और एक प्रकार का 'खदक' नामक कपड़ा लेकर अपनी चितचाही प्रेमिका के द्वार पर जाता है। वह खदक को उसके दरवाजे पर बिछाकर, उस पर शराब की बोतलें रखकर, आप कुछ दूरी पर खड़ा हो जाता है। उस समय प्रेमिका के घर से कुत्ता, बिल्ली, बालक, चाहे जो कोई बाहर निकलता है, उसे वह पुरुष बड़े प्रेम से प्रणाम करता है। यदि प्रेमिका के माता-पिता बाहर आते हैं, तो उनको भी वह बड़ी नम्रता और प्रीति से प्रणाम करता है। यदि लड़की के माँ-बाप अपनी पुत्री की शादी उस युवक से करना पसन्द करते हैं, तो स्वयं लड़की के साथ दरवाजे पर बिछे हुए 'खदक' पर बैठ जाते हैं—साथ ही युवक को भी सम्मान के साथ अपने पास बैठाते हैं। फिर मदिरा-पान के साथ-साथ सगाई का काम आरम्भ होता है। यदि माँ-बाप अपनी लड़की की शादी उस युवक से करना पसंद नहीं करते, तो 'खदक' पर नहीं बैठते और न उन शराब

की बोतलों को छूते ही हैं। यह दशा देखकर युवक 'खदक' और शराब की बोतल लेकर अपने घर वापस चला जाता है। विशेषतः शादी की स्वीकृति या अस्वीकृति लड़कियों की इच्छा पर अवलम्बित रहती है। इस तरफ दामाद को 'घर-जमाई' बनाने की अधिक कोशिश की जाती है।

हूणियों के समाज में पत्नी बरने का ढंग भी विचित्र ही है। एक पिता के जितने पुत्र होते हैं, सभी शादी नहीं करने पाते। केवल सबसे बड़ा लड़का शादी करता है। उसी की स्त्री सब भाइयों की स्त्री मानी जाती है! इनके सम्बन्ध से जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह केवल बड़े भाई की मानी जायगी—न कि सभी भाइयों की !!

इस देश में अन्न की उपज बहुत कम होती है, अतः यहाँ के निवासियों में मांस-भक्षण का रिवाज अधिक है। जिस तिब्बती के पास जितने ही अधिक भेड़, बकरी, चँवरी गाय और झबरे बैल होते हैं, वह उतना ही बड़ा धनवान समझा जाता है। धनाढ्यता और दरिद्रता यहाँ पशुओं की न्यूनाधिक संख्या पर अवलम्बित है। जो लोग बहुत धनाढ्य होते हैं, उनके पास तीन-तीन हजार गाय-बैल और आठ-आठ नौ-नौ हजार भेड़-बकरियाँ होती हैं। साधारण श्रेणी के तिब्बतियों के पास भी पचास के करीब गाय-बैल और लगभग एक हजार भेंड़-बकरियाँ होती हैं। तिब्बती लोग गाय-बैल और भेड़-बकरी आदि सभी के मांस खाते हैं। गाय अथवा बैल का मांस खाना

ये कुछ अनुचित नहीं समझते ! हमारे देश में भी मरे हुए गाय-बैलों के मांस देहातों के चमार खाया करते हैं। किन्तु तिब्बती लोग अपने प्रयोजन के लिए ही इन पशुओं का वध करते हैं ! उनमें पशु-वध की प्रथा भी विचित्र है। वे पशु को शस्त्र से नहीं मारते, बल्कि नाक-मुँह कसकर बाँध देते हैं, बस पशु तड़प-तड़पकर मर जाते हैं !!! बौद्धधर्म के अनुयायी होने के कारण वे शस्त्र-हिंसा से दूर रहना चाहते हैं ! वाह ! तिब्बती शब्द-कोष में 'अहिंसा' का क्या ही सुन्दर अर्थ लगाया गया है !

गर्बेयांग वालों की तरह तिब्बतियों में भी चाय का रिवाज है। तिब्बत-निवासी—'हूणिया' कहे जाते हैं। इनकी दो भिन्न जातियाँ है, जिनमें से एक 'डोम' कही जाती है, और दूसरी—साधारण बोलचाल में—'हूणिया'। यद्यपि ये दोनों जातियाँ एक ही फिर्के के लोगों से बनी हैं; तथापि इनमें परस्पर शादी-ब्याह नहीं हो सकता। हाँ, खान-पान में इनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। हूणियों में शराब का दौरदौरा अधिक रहता है। शराब की यहाँ कोई दूकान नहीं है। पर ये अपने घरों में स्वयं शराब बना लेते हैं। हमारे यहाँ जैसे लोग सत्तू में जल मिलाकर खाते हैं। वैसे ही हूणिये सत्तू में शराब, मिलाकर खाते हैं !

यहाँ तो लामाओं में भी शराब और मांस का चलन है। हमारे देश के मठों में साधु-महन्तों की जैसी अवस्था होती है, ठीक वैसे ही इन लामाओं को भी समझिये। जगह-जगह इनके

मठ बने हुए हैं, जहाँ बहुत-से यात्री इनके दर्शन को आते-जाते हैं। साधु-महन्तों की भाँति इनको भी अविवाहित: ब्रह्मचारी रहना पड़ता है। कितने लोग मठाधीश होने के लोभ से भी लामा बन जाते हैं। इनमें स्त्री और पुरुष—दोनों प्रकार के लोग होते हैं। ये लोग ईश्वर के अनन्य उपासक समझे जाते हैं। इनमें यदि कोई कुकर्मी पकड़ा जाता है, तो उसे घोर दंड भोगना पड़ता है। मन्दिर का पुजारी कोई लामा अगर बदचलन साबित होता है तो उसके हाथ-पाँव काट लिये जाते हैं।

हमारे देश के साधु-महन्त बड़ी-बड़ी कोठियों में पड़े-पड़े खूब गुलछर्रे उड़ाते हैं। फिर भी अपने को मठाधीश और गोस्वामी कहते हैं। उनके दुराचारों के लिए उन्हें कोई दंड देनेवाला नहीं है। वैराग्य की ओट में वे समाज में पाप का प्रचार करते हैं; परन्तु उनकी दाल अब अधिक समय तक नहीं गलेगी।

हूणियों की मृत्यु के पश्चात् उनकी दाह-क्रिया में लामा ही पुरोहित होते हैं। उनके दाह-संस्कार का ढंग भी अनोखा ही है। सबकी दाह-क्रिया एक ही प्रकार से नहीं की जाती। मृतक के दाह-संस्कार के समय लामा लोग हाथ में एक प्रकार की पुस्तक लेकर अन्तिम संस्कार की विधि ढूँढ़ते हैं। उस समय मृतक को पानी में डुबो देने, जमीन में गाड़ देने और टुकड़े-टुकड़े काटकर चील-कौओं को खिला देने की या ऐसी ही और कोई विधि, जो लामाओं को सूझती है, बतलाते हैं। उसी के अनुसार मृतक का अन्तिम संस्कार किया जाता है। कभी-कभी

ऐसा भी होता है कि मृतक को पत्थर के सहारे किसी ऊँचे स्थान पर खड़ा कर देते हैं, उसके समीप धूप-बत्ती जला देते हैं, चील-कौवे मृतक को नोच-नोचकर खा डालते हैं। मृतक को अग्नि में ये लोग कभी नहीं जलाते। लामाओं की बातों को लोग ईश्वरीय संदेश के सदृश मानते हैं।

तिब्बत के बहुत-से लामा अपने हाथों में 'मनेपने' अथवा 'ओम् माने पद्मे हुंग' सम्बोधित करने वाली एक प्रकार की लकड़ी लिये इधर-उधर जयजयकार करते हुए घूमते रहते हैं। यह 'मनेपने' क्या चीज है, सो भी सुनिये। एक लकड़ी में एक बड़ी चिलम इस प्रकार खोंस लेते हैं, जो आवश्यकतानुसार घुमाई जा सके। उस बड़ी चिलम में भी ताम्बे की एक ऐसी चिलम होती है, जिसे वे घुमाते रहते हैं और 'ओम् माने पद्मे हुंग' का जप करते रहते हैं। यह एक अद्भुत प्रथा देखने में आई!

अच्छा, तिब्बत का पूरा वृत्तान्त मैं 'तिब्बत-प्रवेश' के समय आगे सुनाऊँगा। अब ताकलाकोट की ओर लौटिये।

ताकलाकोट के किले में लामाओं का एक बहुत बड़ा मंदिर है। उस पर सोने की पताका लगी हुई है। भीतर भगवान् बुद्ध तथा उनकी शिष्य-मंडली की मूर्त्तियाँ हैं। मूर्तियों के समीप दिन-रात घी के चिराग जलते रहते हैं। मैंने देखा, मंदिर के अन्दर लामाओं के बैठने के लिए गलीचे बिछे हुए थे। मूर्त्तियों के पास में बहुत-से लामा बैठे हुए मिले, जो दर्शक-यात्रियों को तरह-तरह की सुविधा पहुँचाते हैं। मंदिर

के अन्दर घोर अन्धकार है। यदि लामा लोग हाथ पकड़कर यात्रियों को रास्ता न दिखलावें, तो इधर-उधर गिर पड़ने का भय रहता है। मन्दिर में चारों ओर से धूप-बत्ती की सुगंध उड़ रही थी। मूर्त्तियों के पास में बैठे हुए लामा तरह-तरह के मंत्र पढ़ते जाते और बीच-बीच में ठहर-ठहरकर एक प्रकार का बाजा बजाने लगते थे।



[ तिब्बत के एक प्रसिद्ध लामा ]

यहाँ के सबसे बड़े लामा के सामने मैं मिसरी और छुहारे रखकर खड़ा हो गया। मुझे देखकर वे मुस्कराये और बड़ी प्रसन्नता से मेरे सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। उनमें एक तेज झलक रहा था। सुन्दर शरीर, प्रसन्न मुख और तेजस्वी आँखें देखकर श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी। उनका वस्त्र एक

विचित्र ही प्रकार का था। जब वे अपने महल से बाहर मुझसे मिलने के लिए दरबार में आये, तब चीनी रेशम का झूल या चोगा पहने हुए थे। चोगे के ऊपर से इजारबन्द बाँधे हुए थे। स्त्रियों के ऐसा बाल सँवारे हुए थे। कानों में फिरोजा-पत्थर के टुकड़े लटक रहे थे। दाहिने कान पर एक लकड़ी की कलम भी थी।

यथायोग्य कुशल-क्षेम पूछने के बाद दुभाषिया-द्वारा मेरे रहने के स्थान का नाम पूछा। मैंने एक शब्द में 'भारतवर्ष' कहा। इससे सन्तुष्ट न होकर विशेष आग्रह से ठीक उसी स्थान का नाम पूछा, जहाँ का मैं रहनेवाला था। मैंने कहा—"मैं उस जाति का हूँ, जिसका राज्य एक समय तिब्बत तक विस्तृत था—जिसने बुद्ध के मत का प्रचार तिब्बत में किया था।"

मेरी इन बातों ने उनके कुतूहल को और भी बढ़ा दिया। उन्होंने इसके विषय में कुछ और जानना चाहा। तब मैंने २००० वर्ष पूर्व के ऐतिहासिक वृत्तान्त का वर्णन करते हुए कहा—"मैं मुजफ्फरपुर जिले का रहनेवाला हूँ, जो बिहार-प्रान्त में है और जहाँ हम लोगों के पूर्वजों की राजधानी 'वैशाली' थी। आज तक 'वैशाली' का खँड़हर मुजफ्फरपुर से उत्तर 'बसाढ़' गाँव में है, और तिब्बत का सबसे पहला राजा वहीं के राज-वंश का था। ६३० अथवा ६४० ई० में सौंग-टस्न-गोम्फो द्वारा बौद्ध मत तिब्बत में फैलाया गया था। उसी समय में तिब्बत की आधुनिक वर्णमाला भारत में लाई गई।

मेरी इन ऐतिहासिक बातों को सुनकर वे मेरी ओर बहुत झुके। बड़ा आग्रह किया कि उनके साथ मैं किले में ही ठहरूँ।

किले में रहनेवाले लामा से मिल चुकने के बाद मैंने यहाँ के जोगपन-हाकिम से भी भेंट की। ये महाशय बड़े नम्र और मिलनसार हैं। जो लोग इनसे मिलने जाते हैं, कुछ-न-कुछ भेंट अवश्य ले जाते हैं। मैं कुछ मेवे और मिसरी ले गया था। इनका पूरा नाम श्री प्रतापनारायणसिंह है। एक दुभाषिये के द्वारा मैंने इनसे बहुत-सी बातें कीं। बात-ही-बात में इन्होंने महात्मा गांधी की चर्चा छेड़ दी। इनके मुँह से महात्मा गांधी का नाम सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ! महात्मा गांधी के नाम की धूम केवल भारत में ही नहीं है, बल्कि बीहड़-से-बीहड़ पहाड़ी देश में भी उनका यश व्याप रहा है! धन्य गांधी!!

बातचीत करने के बाद जोगपन महाशय ने मुझे अपने साथ लेकर सम्पूर्ण किला घूम-घूमकर दिखलाया—साथ ही लासा, चीन आदि स्थानों की सुन्दर कारीगरी के नमूने भी दिखलाये। उन्होंने बड़े आग्रह से मुझे कुछ दिनों तक किले में रहने को कहा; किन्तु मैंने—'बड़ों की आस रक्खो, पर पास न जाओ'—इस कहावत के अनुसार किले में रहना उचित न समझा। तब उन्होंने मेरे साथ अपना एक आदमी इसलिए तैनात कर दिया कि जबतक मैं ताकलाकोट में रहूँ, मुझे कोई कष्ट न हो।

इधर हाकिमों की अदालत में मुकदमे लड़ने के लिए कानून के बड़े-बड़े पोथों या हुज्जती वकीलों की कोई आवश्यकता नहीं

पड़ती। फरियादी सीधे जोगपन-हाकिम के पास चला जाता है। बस सारा झगड़ा थोड़ी ही देर में निपट जाता है। राजकाज चलाने के लिए नमक-कर, रोड-सेस, इनकम-टैक्स या म्युनिसि-पल-टैक्स आदि नहीं लगे हुए हैं। कर वसूल करने में प्रजा के साथ कोई सख्ती नहीं की जाती। हूणिये अपने हाकिम का विचित्र सम्मान करते हैं! जब कभी उन्हें हाकिम के सामने किसी काम से जाना पड़ता है, तब वे बड़े दीन बनकर—मुँह से जीभ बाहर निकालकर—खड़े रहते हैं! जबतक हाकिम के सामने से नहीं हटते, तबतक यों ही जीभ निकाले खड़े रहते हैं!

ताकलाकोट में तीन पट्टियाँ हैं। प्रत्येक पट्टी में ३६ ग्राम हैं। जोगपन-हाकिम का मकान बहुत ऊँचे टीले पर है। वहाँ घास तथा जल आदि का अभाव रहता है। इसलिए प्रतिदिन भिन्न-भिन्न ग्रामों के तीस मनुष्य नीचे से ऊपर किले में जल तथा घास पहुँचाया करते हैं। इसके लिए वे किसी प्रकार की मजूरी नहीं लेते। लकड़ी के अभाव के कारण इधर घास जला-जला कर लोग खाना पकाते हैं।

जो लोग हिन्दुस्तान से इधर व्यापार के लिए आते हैं, उन्हें १०० फाँचे गल्ले पीछे १० फाँचे गल्ले जोगपन-महाशय को देने पड़ते हैं। इसके बदले में वे भी अपनी ओर से गल्ले देनेवालों को दस फाँचे नमक देते हैं। 'फाँचा' एक प्रकार का बोरा होता है, जिसमें अन्न भर, बकरियों पर लादकर, लोग इधर-उधर ले जाते हैं। महीने में दो बार इधर की प्रजा बड़ी

धूमधाम से किले की परिक्रमा करने आती है। इस परिक्रमा को लोग पुण्यदायक समझते हैं!

लामा और जोगपन-हाकिम से मिलकर मैं अपने डेरे पर वापस चला आया। यहाँ आकर कैलास-मानस-सरोवर-यात्रा की आवश्यक तैयारियाँ करने लगा।

ताकलाकोट आने में तिब्बत जाने का मार्ग भयानक है। रास्ते में बहुत दूर तक सुनसान मैदान दिखाई पड़ता है। कहीं कोई टिकाव या धर्मशाला नहीं है। कोई दूकान भी नहीं, जहाँ कुछ खाने-पीने की चीजें मिलें। डाकुओं का तो बहुत अधिक भय रहता है। इसीलिए भोटिये भी ताकलामंडी से आगे नहीं बढ़ते।

गर्बेयांग से ताकलाकोट तक में जो घोड़े और चँवरी गाय ले आया था, उनके मालिक ने गाय-घोड़े वापस ले लिये। किन्तु हमलोगों ने झब्बु और घोड़े किसी-न-किसी प्रकार ठीक ही कर लिये। आटा, घी, मसूर और उर्द की दाल, चावल, मिसरी, छुहारे आदि भी मंडी से खरीदकर पास रख लिये। शस्त्र तो हमलोगों के पास पहले ही से था। अब किसी प्रकार की तैयारी की कमी न रही।

पूरा इन्तजाम कर हमलोग १४ जुलाई (शुक्रवार) को ताकलाकोट से आगे बढ़ने के लिए तैयार हो गये। मार्ग की कठिनाइयों के सहने की शक्ति देने के लिए रात-भर भगवान से निहोरा करते रहे।

♣

# षष्ठ सोपान

## राक्षस-ताल

१४ जुलाई, शुक्रवार—

आज हमलोग पूरी तैयारी कर प्रातःकाल ताकलाकोट से आगे चल पड़े। हमलोगों के साथ में नथे हुए झब्बुओं की सवारी थी, जिससे मार्ग में चलने की कठिनाई नहीं उठानी पड़ी। नथे हुए, रिकाबवाले, झब्बुओं पर चढ़कर चलने से मार्ग में गिरने का भय नहीं रहता।

ताकलाकोट से आध मील आगे बढ़ने पर हमें एक पहाड़ी मैदान मिला। मैदान से डेढ़ मील आगे जाने पर मटर और सरसों के लहलहाते हुए सुन्दर खेत दिखलाई पड़े। मार्ग में हमलोगों के मन में किसी प्रकार का भय नहीं था; क्योंकि हमलोगों की मंडली बहुत बड़ी थी, साथ में शस्त्र का भी काफी इन्तजाम था। अवसर पड़ने पर बड़ी आसानी से डाकुओं से रक्षा हो सकती थी। हमलोग परस्पर बातें करते और हरियाली का सुखानुभव करते हुए ढाई मील तक चले आये।

ताकलाकोट से छः मील की दूरी पर 'रूंग' नाम का एक मैदान मिला। हमलोगों ने वहीं पर ठहरकर विश्राम किया। 'रूंग' में न कोई बस्ती है और न कोई दूकान; धर्मशाला भी

नहीं है। ताकलाकोट से ऊपर विश्राम के लिए जितने टिकाव मिलते हैं, सब 'रूंग' की भाँति हैं।

इस तरफ कुछ झर-झर बहते हुए सोतों के भी दर्शन हुए। ये सोते ऊपर के बर्फीले पर्वतों के पिघलने से दूर तक बहते रहते हैं। इन सोतों के किनारे एक प्रकार की काँटेदार घास देखने में आई, जिसे झब्बू बड़े चाव से खाते हैं तथा यात्री जिससे ईन्धन का भी काम निकालते हैं। लकड़ी के दर्शन तो इधर 'कालापानी' से ही नहीं होते। मैदान के चारों ओर बर्फीले पर्वतों के दर्शन होते हैं। यदि इन पर्वतों से बर्फ का कोई ढोंका टूटकर गिरा तो फिर ईश्वर ही रक्षक है!

रात्रि में 'रूंग' अत्यंत सुनसान और भयानक मालूम पड़ता है। हमलोगों के साथ में रावटी और खेमे थे, इससे अधिक दिक्कत नहीं उठानी पड़ी।

१५ जुलाई, शनिवार—

आज प्रातःकाल हमलोग 'रूंग' से आगे बढ़े। तीन ही मील की दूरी पर 'बलड़ख' नामक मैदान मिला। इसका भी रंग-ढंग बस 'रूंग' का-सा ही समझिये। 'बलड़ख' से ही डाकुओं का खतरा आरम्भ होता है। हमलोगों को 'बलड़ख' में एक सोते के किनारे डाकुओं के कुछ गरोह डेरा डाले हुए मिले। इनकी सूरत-शकल म्लेच्छों की-सी थी। ये अपने-अपने चेहरे पर कत्था पीसकर लगाये हुए थे। शरीर पर 'बक्कु' नामक एक प्रकार का पहनावा पहने थे, जो भेड़-बकरियों की खाल से

तैयार किया जाता है। खाल का ऊपरी बाल वाला हिस्सा नीचे कर लिया जाता है और ऊपर वही कोरा चमड़ा दिखलाई पड़ता है। कंधों पर बन्दूक और हाथों में बरछे लिए हुए ये



[ तिब्बत के पुरुष ]

अत्यंत भयानक मालूम पड़ते थे ! इस गरोह का एक डाकू हम-लोगों के पास आया; किन्तु हमलोगों की टोटेदार बन्दूकों को देखकर मन में सहम गया। यद्यपि इन डाकुओं के पास हम-लोगों से कहीं अधिक अस्त्र-शस्त्र थे, तथापि हमारे यहाँ की

शीघ्रातिशीघ्र फायर करनेवाली बंदूकों के आगे उनकी क्या हस्ती ! डाकुओं के पास की बंदूकें, बाबा आदम के जमाने की होने के कारण, दस मिनट में एक बार से अधिक फायर नहीं कर पातीं ! यदि ये लोग हमलोगों पर बरछे आदि लेकर धावा बोल देते, तो भी एक-एक मिनट में अनेक फायर करनेवाली बंदूकों के आगे ये न टिक सकते। इधर के पहाड़ी मार्गों में चलते समय प्रत्येक मनुष्य के पास टोटेदार बंदूक का होना अत्यावश्यक है।

गरोह के उस डाकू ने जब देखा कि हमलोगों के ऊपर उसके दाँत नहीं गड़ सकते, तब उसने भाव बदलकर यों कहना आरम्भ किया—"मैं एक सौदागर हूँ। मार्ग में डाकुओं का भय होने के कारण आगे बढ़ने में हिम्मत जाती रहती है। अच्छा हो, यदि हम सब लोग एक दल बनाकर आगे का मार्ग तय करें, ताकि अवसर पड़ने पर एक दूसरे के सहायक बन सकें।" उसकी यह चालबाजी से भरी बात हमें साथ के एक दुभाषिये से ज्ञात हुई। हमलोगों ने डाकू की बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, और आगे की ओर चल पड़े।

साढ़े तीन मील के बाद 'कुल्ला धुरका' नामक एक टिकाव और मिला। यह भी कम भयानक स्थान नहीं है। हमलोगों की इच्छा यहाँ ठहरने की न थी; परन्तु बर्फ की वर्षा के कारण हमलोग यहाँ से आगे बढ़ने में असमर्थ हो गये। थोड़ी देर में पानी भी बरसने लगा। एक घंटे के अन्दर चारों तरफ के पर्वत बर्फ से आच्छादित हो गये। हमलोगों ने रावटी और खेमे खड़ा कर

उनमें शरण ली। इस प्रकार प्राणों की रक्षा हुई—अन्यथा खेमे के विना यहाँ बर्फ में गल जाना पड़ता! इस स्थान पर भी डाकुओं का बड़ा खतरा रहता है। परन्तु हमलोगों के पास रुपये-गहने आदि माल-असबाब तो थे नहीं, जिनकी हिफाजत के लिए चिन्तित होना पड़ता। साथ में सिर्फ बंदूकों के होने के कारण हमलोगों को किसी प्रकार का खटका नहीं रहा।

ताकलाकोट से 'कुल्ला धुरका' लगभग १३ मील है।

१६ जुलाई, रविवार—

आज प्रातःकाल ही 'कुल्ला धुरका' से आगे बढ़ने का विचार हुआ। परन्तु आगे बढ़ने पर पहाड़ों से टूट-टूटकर बर्फ गिरने के कारण सिर टकरा जाने का भय था। इधर कभी-कभी फौंसी-फूसी भी होती रहती है। बादल दल-के-दल मँड़लाने लगते हैं, बड़ी तेजी से हवा बहने लगती है, सर्दी की प्रबलता बढ़ जाती है, फिर बर्फ का गिरना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में 'कुल्ला धुरका' से आगे बढ़ना प्राण देने के लिए उतारू होना होता। खैर, हमलोग प्रातःकाल न चलकर १२ बजे के करीब 'कुल्ला धुरका' से आगे बढ़े।

थोड़ी सलामी चढ़ाई के उपरान्त ढाई मील चलने पर 'राक्षस-ताल' दिखलाई पड़ा। दूर से देखने में यह ताल ६—७ मील के घेरे से अधिक नहीं मालूम पड़ता; पर वस्तुतः यह ६० से ८० मील तक के घेरे में फैला हुआ है। दूर से हमें ताल आध मील पर स्थित ज्ञात हुआ; परन्तु ५ मील आगे बढ़ने पर भी

हमलोग ताल के पास नहीं पहुँच पाये ! पहाड़ी प्रान्तों में हवा पतली होने के कारण दूर की चीजें निकटस्थ मालूम पड़ती हैं। किन्तु कुछ और आगे बढ़ने पर हमें 'राक्षस-ताल' अपने विशाल रूप में दिखलाई पड़ा।



[ तिब्बत की स्त्रियाँ ]

तिब्बत में समुद्र को भी मात करनेवाले दो बड़े ताल हैं,

एक यह 'राक्षस-ताल' है और दूसरा जगद्विख्यात 'मानस-सरोवर' है। पहाड़ी प्रान्त में, जहाँ समतल भूमि नहीं, इतनी बड़ी-बड़ी झीलें देखकर चकित हो जाना पड़ता है।

'राक्षस-ताल' का जल बहुत ठंडा है। इसमें दो-चार टीले दृष्टिगत हुए। लोगों का कथन है कि उन टीलों में लामाओं के रहने के लिए गुफाएँ हैं। आश्विन-कार्त्तिक में जब ताल का जल जमकर बर्फ बन जाता है, तब यात्री लोग बर्फ पर चढ़कर उन गुफाओं में जाते हैं और लामाओं को अधिक समय के लिए चाय-सत्तू आदि दे देते हैं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि उन लामाओं को कोई खाद्य-पदार्थ नहीं दिया जाता। उन लोगों का जीवन केवल जल और वायु पर अवलम्बित है! यदि नाव का प्रबन्ध होता, तो हमलोग भी उन गुफाओं के तपस्वी लामाओं के दर्शन करते। परन्तु इस तरफ नाव रखने की प्रथा नहीं है!

'राक्षस-ताल' की लहरें बड़ी तेज थीं। उनके भय से कोई स्नान नहीं कर पाता। यों भी लोग इसमें स्नान करना अपवित्र समझते हैं। इसका नाम राक्षस-ताल क्यों पड़ा?

जब शिवजी कैलास-पर्वत पर तपस्या करते थे, तब राक्षसगण उन्हें बहुत तंग करने लगे! उनसे बचने के लिए कैलास छोड़कर शिवजी ने यहाँ पर आश्रय लिया! परन्तु राक्षसों ने यहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा! कहा जाता है कि यह 'राक्षस-ताल' उन्हीं राक्षसों का खोदा हुआ है। कितने ही इसे 'रावण-ह्रद' भी कहते हैं।

राक्षस-ताल के किनारे गदहों के-से झुंड-के-झुंड घोड़े दिखलाई पड़े। इधर लोग इन्हीं घोड़ों की लीद से ईन्धन का काम निकालते हैं। हमलोग ने भी जरूरत-भर इनकी लीद का संग्रह किया! आग सुलगाने के लिए इधर चकमक और भाथी रक्खी जाती है।

डाकुओं के झुंड इधर भी मिले। किन्तु हमलोगों से छेड़छाड़ करने की उनकी हिम्मत नहीं हुई।

इस तरफ काँटेदार घासों के दर्शन नहीं हुए।

आज दिन-भर में हमलोग आठ मील चले और राक्षस-ताल के पास ही सब लोगों ने विश्राम किया।

अहा! कैसा सुनसान स्थान है! यात्रियों के सिवा कहीं चिड़ियों के भी दर्शन नहीं होते। प्रकृति ने इस स्थान पर बड़ी कृपा की है। यहाँ की प्राकृतिक लुनाई का वर्णन करना तो मेरी लेखनी की शक्ति से बाहर की बात है। हाँ, भावुक कवियों को यहाँ पर मानसिक उड़ान के लिए काफी साधन मिल सकता है।

एक ओर बर्फ से ढँकी हुई पर्वतों की चोटियाँ देख पड़ती हैं और दूसरी तरफ समुद्र के हिलोरों को भी मात करनेवाली तरल तरंगें मन में अनिर्वचनीय आनंद उत्पन्न करती हैं। यह सुनसान भूमि देवताओं की तपस्या के ही योग्य है।

अहा! कितना पवित्र आनंद है! जहाँ चाहें घूमें, जिससे चाहें दिल खोलकर बातें करें; कहीं कोई रुकावट नहीं, कोई जबाँबन्दी नहीं, कोई पराधीनता नहीं! ताल की एक-एक लहर

उछल-उछलकर कहती है—"ऐसा आनन्द वहीं मिलेगा जहाँ इस 'राक्षस-ताल' ही की भाँति कोई स्वतंत्र और स्वच्छंद स्थान



[ तिब्बत का एक बालक विद्यार्थी ]

होगा। स्वतंत्रता का सच्चा अनुभव तो ऐसी सुनसान शुद्ध भूमि में ही हो सकता है।"

भारत की सन्तान इन सब सुखों को क्या समझे! वह अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई है, घर से बाहर निकलकर प्रकृति के आनंद लूटने के उसमें हौसले ही नहीं हैं! हममें हौसले हों कहाँ से? यदि आज हममें शिक्षा का काफी प्रचार होता, तो शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ हममें तरह-तरह की महत्त्वाकांक्षाएँ

भी उत्पन्न होतीं, देश-प्रेम का भाव जाग्रत होता, हम समझ सकते कि देश हमारी झोपड़ी तक ही सीमित नहीं है; और उत्तर में कैलास से लेकर दक्षिण में लंका तक यात्रा किये विना हमारी शिक्षा अधूरी समझी जाती। तभी हम देशमाता का सच्चा दर्शन कर सकते, तभी हम अपनी शक्तियों से परिचित होते।

यही सब सोचते-सोचते ग्लानिवश मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। 'और एक बार अपने विस्तृत भारत को, हे परमात्मन्! पुण्य स्वर्णभूमि बना दो'—आज इस पवित्र पर्वत-स्थल में इस भारतीय हृदय ने यही आर्त्त प्रार्थना की।

♣

# सप्तम सोपान

## कैलास के अंचल में

१७ जुलाई, सोमवार—साढ़े सात बजे हमलोग 'राक्षस-ताल' से चल पड़े। दो मील के बाद एक टीले पर चढ़े। अहा! दूर से ही जगद्विख्यात परम पूजनीय 'मानस-सरोवर' के दर्शन हुए—इसकी धवल-उज्ज्वल-चंचल लहरें कैसी सुन्दर मालूम पड़ती थीं! लड़कपन से ही स्कूलों के भूगोल में हमें 'मानस-सरोवर' का हाल पढ़ाया जाता था, बड़े-बूढ़ों के मुख से और रामायण की पोथी में भी इसके बारे में बहुत-कुछ सुना-पढ़ा था! आज उसी मानस-सरोवर को अपनी आँखों से देखकर मैं कृतकृत्य हो गया!

यहाँ से आगे का मार्ग आनन्ददायक है—हमारी बाईं ओर 'राक्षस-ताल' है और दाहिनी ओर 'मानस-सरोवर' लहरा रहा है। किसी-किसी स्थान पर ये दोनों जलाशय इतने निकट हो गये हैं कि मालूम पड़ता है, यात्री अब इनमें से किसी एक में जा गिरेगा। परन्तु, फिर भी, सारा दिन चलते रहने पर 'मानस-सरोवर' के निकट नहीं पहुँच पाते। कैसी भूलभुलैयाँ है!

आखिर हम जिस उद्देश्य से घर-बार छोड़कर इतनी दूर के बीहड़ पर्वतों के यात्री बने थे, उसमें सफलता प्राप्त हुई—

राक्षस-ताल से कुछ दूर आगे बढ़ने पर भगवान् शंकर के दिव्य धाम 'कैलास' के दर्शन हुए ! अहा ! इसके पास का दृश्य कितना भव्य, कितना सुन्दर है ! यहाँ की छटा का यथार्थ वर्णन करना किसी भी कुशल लेखक की सामर्थ्य से बाहर है। शायद ही कोई प्रवीण चित्रकार यहाँ के अनुपम दृश्यों का चित्रण कर दर्शकों के सम्मुख रख सके !

स्वनामधन्य कैलास-यात्री और सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखक एवं वक्ता स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने 'कैलास' का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। देखिये—

"क्या ही अलौकिक दृश्य था ! वह अनुपम छटा ! श्री॰ कैलासजी का पर्वत सचमुच ईश्वरीय विभूति का अनोखा चमत्कार है। मैंने मन्दिर, शिवालय बहुत-से देखे हैं; पर ऐसा प्राकृतिक शिवालय इस भूमंडल पर कहीं नहीं है। जिस कुशल शिल्पी ने प्रथम शिवालय की रचना-विधि का नक्शा तैयार किया होगा, उसके हृदय-पट पर तिब्बत-स्थित इस नैसर्गिक शिवालय की प्रतिकृति अवश्य रही होगी। इसके बिना वह कदापि शिवालय बना नहीं सकता था। प्रकृति ने हिम द्वारा वही काट, वही छाँट, वही घेरा, वही चिनाई, वही सजावट इस कैलास-पर्वत के निर्माण में खर्च की है। भारत में नकली शिवालय देखा करते थे, आज यहाँ शिवजी का असली स्थान देख लिया। २१,८५० फीट ऊँचे इस कैलासजी की महिमा का वर्णन क्या कोई कर सकता है ? किस गौरव के

साथ, उन्नत मुख किये, यह चारों ओर देख रहा है ! इसकी दृष्टि अपने प्यारे भारत पर पड़ रही है, जहाँ इसकी प्रतिकृति बनाकर करोड़ों आत्माएँ 'हर हर महादेव !' की ध्वनि कर अपने को धन्य मानती हैं। सुदूर चीन, जापान, स्याम, बरमा, लंका आदि देशों से बौद्धधर्मावलम्बी इसकी परिक्रमा करने आते हैं। श्रीकैलासजी का वह विश्वकर्मा-रचित मन्दिर उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है, जब स्वच्छन्द भारत के बच्चे चीन-जापान के बच्चों के साथ प्रेमालिङ्गन करते हुए इसकी परिक्रमा करेंगे।"

"जिस कैलासजी की महिमा पुराणों ने गाई है, जिसकी प्रशंसा में तिब्बत के ग्रन्थ भरे पड़े हैं, उस श्रीकैलास के दर्शन कर आज मैंने अपने-आपको धन्य माना। यद्यपि इस पवित्र दर्शन के लिए बड़े-बड़े कष्ट सहने पड़े, गन्दे तिब्बतियों के साथ रहना पड़ा, लामाओं की घुड़कियाँ सुनीं, तो भी क्या; इस आनन्द के सम्मुख वे सब दुःख हवा हो जाते हैं !"

"श्रीकैलासजी को तीन बार नमस्कार किया। फिर 'वन्दे मातरम्' का जप कर 'हर हर महादेव !' की ध्वनि से श्रीकैलास-जी को प्रसन्न कर चल पड़े।"

स्वामी सत्यदेवजी की ये पंक्तियाँ प्रमाण-स्वरूप उपस्थित हैं—

"दरच्चन-मन्दिर में तिब्बती क्रूरता की भयङ्कर व्यवस्था मालूम हुई। लामाओं ने एक बकरे को पकड़कर उसका मुँह और नाक कसकर बाँध दी; दम घुटने से पशु छटपटाने लगा;

बेचारे ने तड़प-तड़पकर प्राण छोड़ दिये! अपनी इस क्रूरता का कारण इन्होंने यह बतलाया कि बौद्ध-धर्म के अनुसार लामाओं को जीव-हिंसा का निषेध है; इसलिये उस नियम की रक्षा के हित पशु को शस्त्र से नहीं मारते; केवल दम बन्द कर देते हैं, पशु आप ही मर जाता है! यह फिलासफी इन लामाओं की है!"

अच्छा, पाठक! अब मेरे साथ फिर आगे बढ़िये—

मार्ग के आनन्द का क्या कहना! कहीं जल का सुमधुर कल-कल शब्द कानों में वीणा की झंकार भरता है, तो कहीं दूर तक फैली हरियाली अपनी मस्तानी सूरत से यात्रियों के चित्त को मोह लेती है! राक्षस-ताल से लेकर मार्ग में बराबर हरी-हरी काँटेदार घासें फैली हुई हैं। झब्बु बड़े प्रेम से, पान के बीड़े की भाँति, इन्हें मुँह में डालते चबाते चले जा रहे हैं—जहाँ चाहते हैं, स्वतंत्रता-पूर्वक चरते हैं, और बहुत अधिक जोर करने ही पर आगे को पाँव बढ़ाते हैं। कैसा आनन्द है, कैसी प्रफुल्लता है! ऐसे दिवस बार-बार नहीं मिलते। परन्तु जो उत्साही हैं, प्रकृति के उपासक हैं, वे अवश्य ही एक बार इस आनन्द का अनुभव कर अपने को कृतकृत्य कर सकते हैं। हाँ, यह आनन्द घर में पड़े-हड़े नहीं मिल सकता। जरूरत है कि हम घर छोड़कर बाहर के भी दृश्य देखने का प्रयत्न करें।

मार्ग से ही मानस-सरोवर-स्थित 'जीड गुफा' दिखलाई पड़ती है। मानस-सरोवर और राक्षस-ताल के बीच से होकर, दूर तक,

एक लम्बा-चौड़ा मैदान फैला हुआ है। हमलोग इसी मैदान का आनन्द लूटते हुए आगे जा रहे थे। थोड़ी दूर पर खारे पानी का एक सोता मिला, जिसे हमलोगों को पार करना पड़ा। आगे का मार्ग पत्थर और कंकड़ों से आच्छादित नहीं, बल्कि एक रेतीला रास्ता है। इस प्रकार के रास्ते सोन आदि नदियों के किनारे तथा देशी पहाड़ियों में मिलते हैं, जिन पर चलने से दम फूला करता है।

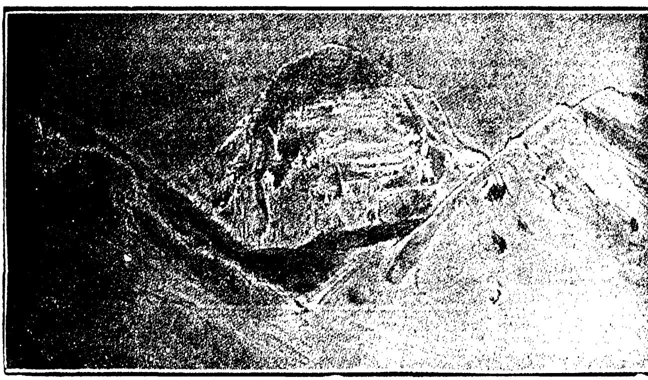
मार्ग में हम लोगों को फिर डाकुओं के झुंड मिले, जो खच्चरों पर सवार थे। उन्हें देखकर हमलोगों को कुछ भय अवश्य हुआ; परन्तु उन्होंने हमलोगों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाया—शांत भाव से वे अपनी राह चले गये।

इस तरफ के मार्ग में किसे डाकू अथवा किसे यात्री कहें? अवसर पड़ने पर दोनों ही लूटमार करने लगते हैं! इस ओर तिब्बती सरकार का राज्य है; परन्तु इधर किसी प्रकार का थाना, चौकीदारी, पटवारीगिरी आदि का प्रबन्ध नहीं। डाकू लोग तिब्बत-सरकार से बहुत डरते हैं। तिब्बत-सरकार की सम्पूर्ण प्रजा, चाहे वह चोर-डाकू हो या गृहस्थ, अपनी सरकार को ईश्वर-तुल्य मानती है—सरकारी माल चुराना अपने लिए घोर पाप समझती है! हाँ, इधर के डाकू अन्य देशवालों पर—भोटियों आदि पर—अपना धावा बराबर जारी रखते हैं। ये किसी के प्राण के घातक नहीं बनते। गर्मी के दिनों में जब गरतोक्षानिमा, ताकलाकोट आदि मंडियों में

# कैलास-दर्शन



पर्वतराज हिमालय का मुकुट-मणि
भगवान् शंकर का दिव्य धाम—'कैलास'



( बहुत दूर से देखने पर )
हिम-शिला-मंडित शुभ्र कैलास-शिखर का अलौकिक दृश्य

व्यापारियों का जमघट होता है, तब ये लोग झुंड-के-झुंड चीन अथवा लासा की ओर से आते हैं और डाके डाला करते हैं। मार्ग में यदि इन्हें कोई यात्री मिलता है, तो ये उसे अपनी भाषा में आज्ञा देते हैं—"सामने से हट जाओ, माल-असबाब रख दो।" यदि यात्री ने इनका कहना मान लिया, तो कुशल; अन्यथा इनके द्वारा बड़ी दुर्दशा भोगनी पड़ती है।

अभी तक मार्ग में हमें किसी ग्राम अथवा मकान के दर्शन नहीं हुए। १२ मील चलने पर 'बरखा' नामक एक स्थान मिला। इस स्थान पर प्रान्त के 'तर्जुमा' अर्थात् जिला-हाकिम का पड़ाव रहता है। मैंने सोचा था कि तर्जुमा-हाकिम के ठहरने की जगह होने से अवश्य ही यहाँ अच्छे-अच्छे मकान बने होंगे; परन्तु मेरा विचार हवाई किला निकला। 'बरखा' भर में केवल दो छोटे-से मिट्टी के मकान मिले, जो घास-फूस से छाये हुए थे! इनमें से एक मकान तर्जुमा-हाकिम के ठहरने के लिए बना था। इन दो मकानों के अतिरिक्त आठ-दस कम्बल की रावटियाँ खड़ी की हुई मिलीं। इधर मार्ग में सब गाँव इसी ढंग के मिले।

इस तरफ अच्छे मकान बनाना दुःसाध्य है, क्योंकि न तो इधर लकड़ी मिलती है और न मकान बनाने योग्य पत्थर आदि अन्य साधन ही मिलते हैं। चँवरी गाय के रोयें का कम्बल बनता है। इन्हीं कम्बलों की रावटी खड़ी कर लोग अपना निवास बनाते हैं। इधर जलवृष्टि नहीं होती—जिससे रावटी में लोग कुशल-पूर्वक रहते हैं। ग्राम वालों को जब

अधिक बर्फ गिरने की आशंका होती है, तब वे झट रावटी उखाड़ कर दो-चार मील आगे किसी ऐसे स्थान पर जा पहुँचते हैं जहाँ



[ पहाड़ी रास्ते में खच्चरों पर तिब्बती बालक ]

बर्फ के कष्ट की आशंका नहीं रहती। ग्रामवासियों की धन-सम्पत्ति, अथवा जो कुछ समझिये, गायें और बकरियाँ ही हैं।

बहुत दिनों के बाद आज हमलोगों को 'बरखा' में मिट्टी की चौरस भूमि मिली ! हमलोगों ने यहीं पर अपनी रावटी खड़ी कर विश्राम किया। यहाँ से भी कैलास के साफ-साफ दर्शन होते हैं। कैलास-परिक्रमा की पहली गुफा 'दरचन' भी दूरबीन से साफ देख पड़ती है। जहाँ पर हमलोगों का पड़ाव पड़ा, वह स्थान ताकलाकोट से ३३ मील की दूरी पर है। हमारे निकट ही दो-चार जोहारी भोटिये भी रावटी खड़ी कर डेरा डाले हुए थे। ये लोग हमसे बहुत हिल-मिल गये। इन्होंने अपनी दुख-सुख की कथा, तिब्बत की रामकहानी, हमलोगों को सुनाई।

राक्षस-ताल से आगे बढ़ने पर आज दिन-भर पीने लायक जल नहीं मिला; क्योंकि इधर खारा पानी ही मिलता रहता है। यद्यपि मीठे जल वाला मानस-सरोवर राक्षस-ताल के समीप है, तथापि आगे बढ़कर दोनों झीलें एक दूसरे से दूर पड़ गई हैं। प्यास बड़े जोर से लगती थी। आसपास कोई ऐसा झरना न था, जिससे प्यास बुझाई जा सके। पास में एक छोटा-सा पानी का नाला था; किन्तु आसपास के मांस-भक्षियों के कारण वह हड्डियों के ढेर से परिपूर्ण था ! कितने ही लोग प्यास की आतुरता में इसी नाले का जल पी लेते थे ! तर्जुमा-हाकिम के मकान से दो सौ कदम की दूरी पर स्वच्छ जल का एक सोता मिला। इसीमें हमने अपनी प्यास बुझाई।

♣

# अष्टम सोपान

## कैलास की परिक्रमा

१८ जुलाई के प्रातःकाल 'बरखा' से हम आगे बढ़े। एक बड़े मैदान से होकर आगे बढ़ने का रास्ता बना हुआ है। मार्ग में जल के बहुत-से सोते मिले, जिन्हें तैरकर हमलोगों ने पार किया। बरसात के दिनों में, इधर-उधर के छोटे-मोटे सभी सोते एक में मिलकर महा भयानक जलधारा का रूप धारण करते हैं। मार्ग में हरी-हरी काँटेदार घासों की बहार थी। बहुत-से झब्बू और बकरियों के झुंड चरते हुए देख पड़े।

इधर हूणियों के पास मक्खन भी मिलता है। हूणिये एक पतले-से चमड़े की थैली में नमक मिलाकर मक्खन रक्खे रहते हैं! आवश्यकतानुसार वे उसे यात्रियों के हाथ बेचते भी हैं।

इस तरफ अँगरेजी सिक्के नहीं चलते—तिब्बत-सरकार के एक प्रकार के 'टंके' चलते हैं। ताकलाकोट में एक रुपया देने पर तीन टंके बड़ी आसानी से मिल जाते हैं। इधर के ग्राम-वासी हूणिये, जिनको ताकलाकोट की मंडी से कुछ सरोकार रहता है, अपने यहाँ के सिक्के देकर अँगरेजी सिक्के ले लिया करते हैं। ये 'टंके' चाँदी के पतले-पतले टुकड़े होते हैं। हम लोगों ने इधर के सिक्कों का काफी इन्तजाम पहले ही से कर रक्खा था।

चार घंटे तक चलने के पश्चात् हमलोग 'दरचन' नामक स्थान पर पहुँचे। यह 'बरखा' से पाँच मील की दूरी पर है। इस स्थान पर आकर हमलोग 'श्रीकैलास'-पर्वत के निम्न भाग में पहुँच गये।

कैलासजी की परिक्रमा में चार गुफाएँ मिलती हैं। उन चारों गुफाओं में पहली गुफा 'दरचन' की है। दरचन की गुफा चारों गुफाओं में सबसे बड़ी गुफा है। इन गुफाओं के अन्दर गौतम बुद्ध आदि की मूर्त्तियाँ हैं। गुफाओं में लामा लोग भी रहते हैं। 'दरचन' के आसपास जितनी गुफाएँ हैं, सब 'दुकपा' के राजा के अधिकार में हैं। 'दुकपा' दारजिलिंग की ओर कोई स्थान-विशेष है। उस प्रांत के लाट साहब को लोग 'गरफब' कहते हैं, जो इन दिनों दौरे पर निकले हुए थे और दरचन में अपने खास पक्के मकान में ठहरे हुए थे। वे भी 'श्रीकैलास' की परिक्रमा की तैयारी में थे। उनका वास-स्थान कुछ ऊँचाई पर है। उसके नीचे जोहारी लोग रहते हैं।

इन दिनों जोहारी भोटियों का अधिक जमघट था; क्योंकि बहुत-से जोहारी भोटिये ऊन खरीदने के फिराक में थे। इधर तीन टंके का दो सेर पक्का ऊन मिलता है। तिब्बत का नमक बहुत अच्छा होता है। कैलास के आगे किसी खास स्थान से हूणिये सुहागा और नमक लाते हैं, जो भोट-देश में पहुँचते-पहुँचते बिक जाते हैं। दरचन में एक सेर चावल अथवा गेहूँ देने पर बदले में तीन सेर नमक मिल जाया

करता है। इधर चँवरी गाय की पूँछें भी बिकती हैं। दो-चार 'लद्दाख' के व्यापारियों से भेंट हुई। उनसे हमलोगों ने कुछ चीजें मोल लीं। उनके पास बहुत-से अच्छे-अच्छे ऊनी वस्त्र विक्रयार्थ थे। ऐसे वस्त्रों की आवश्यकता पहाड़ी देशों में ही है। हमलोगों ने इन्हें खरीदना उचित न समझा।

दरचन में कुछ दो-मंजिले मकान हैं। इनके अतिरिक्त रेलवे-गुमटियों की भाँति दस-बारह निवास-स्थान थे। दो-चार राव-टियाँ खड़ी थीं। इन्हीं में हूणिया-व्यापारी रहा करते हैं और भोटियों के साथ ऊन, नमक, सोहागा आदि का व्यापार करते हैं।

दरचन एक प्रसिद्ध स्थान है। परन्तु यहाँ गंदगी की बड़ी अधिकता है। चारों ओर हड्डियों और मनुष्य के मैले दिखलाई पड़ते हैं! ठहरनेवाले यात्री स्वयं अपने हाथ से इन गन्दगियों को साफ कर विश्राम-स्थल तैयार करते हैं! हमलोगों ने भी इसी प्रकार यहाँ पर अपने खेमे खड़े किये! यहाँ डाकुओं का बड़ा भय रहता है। सुनने में आया कि कल इधर बारह हथियारबंद डाकू आये थे; किन्तु 'गरपन'-हाकिम के ठहरने का समाचार सुनकर वे यहाँ से वापस चले गये।

'गरपन'-हाकिम से हमलोगों ने भेंट की। एक दुभाषिये के द्वारा बड़ी देर तक बातें होती रहीं। हमने डाकुओं के विषय में भी 'गरपन'-महोदय से कुछ शिकायत की। इस पर आपने एक अरदली को ग्यारह टोटेवाली बन्दूक देकर हमलोगों की

रक्षा के लिए साथ कर दिया। लद्दाख की कई छोटी-छोटी चीजें आपने हमलोगों को उपहार में दीं।

'गरपन'-महोदय बड़े ईश्वर-भक्त व्यक्ति हैं। ईश्वर की सत्ता पर इनका दृढ विश्वास है। सर्वत्र उसी का भरोसा रखकर सुकार्य में लगे रहते हैं। भला जो ईश्वर से डरता रहेगा, उसकी प्रजा उससे क्यों न सन्तुष्ट होगी। वह कुकर्म और अत्याचार ही क्यों करेगा?

पूर्व ही कह चुका हूँ कि लुणिये अपने हाकिम पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं, उसे ईश्वर-तुल्य मानते हैं। बातचीत से ज्ञात हुआ कि 'गरपन'-महोदय स्वयं कैलास-यात्रा के लिए इधर आये हैं। आपके साथ आपकी प्रजा भी यात्रा के लिए आई है। अहा! कैसा अनूठा प्रेम-पूर्ण सम्पर्क है! कहाँ हाकिम, कहाँ प्रजा! किन्तु दोनों ही परस्पर-स्नेह के कारण एक दूसरे के साथ कैलास-यात्रा के लिए आये हैं।

हम अब कैलास के अत्यन्त सन्निकट आ चुके हैं। पाठक भी यहाँ का वृत्तान्त सुनने के लिए उत्सुक होकर प्रतीक्षा करते होंगे। अतः श्रीकैलासजी का कुछ वर्णन प्रेमी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

दरचन के पास से बड़ी दूर तक एक पर्वतमाला चली गई है, जो स्थान-स्थान पर बर्फ के ढेर से ढँकी हुई है। उस पर्वत-माला से पृथक् पर्वत का एक स्वतंत्र भाग है, जिसका घेरा २५ मील है। इसी पर्वत के एक अंश के ऊपर, आकाश से बातें

करता हुआ, एक प्राकृतिक मन्दिर अधिष्ठित है। मन्दिर क्या, बल्कि हमारे देश के मन्दिरों के आकार-प्रकार में बर्फ के टुकड़े जमीन की सतह से २००० फीट ऊपर तक जमे हुए हैं। दूर से ही इसकी ऊँची चोटी चाँदी के मन्दिर की तरह चमकती हुई नजर आती है। बस, पाठक, इसी को श्रीकैलासजी समझिये !

इस शिव-मन्दिर पर किसी का कोई अधिकार नहीं, न दक्षिणा लेनेवाले कोई पुजारी अथवा पंडे ही यहाँ रहते हैं। सभी लोग स्वतंत्रता-पूर्वक इस शिव-मन्दिर के २५ मील के घेरे की परिक्रमा कर अपने जीवन को सफल करते हैं।

ईश्वर ने इस मन्दिर की प्राकृतिक रचना में भी अपने अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। परिक्रमा में चार गुफाएँ मिलती हैं। पहली और मशहूर गुफा 'दरचन' है। दूसरी गुफा का नाम 'लौंडी-गुनमा', तीसरी गुफा का 'डुरफ' या 'डरफू' और 'घुट्ठुलुपु', तथा चौथी गुफा का 'जमलिपु' है।

पाठक ! यह थोड़े में श्रीकैलासजी के दिव्य मंदिर का परिचय है, विस्तृत वृत्तान्त तो मैं आपको आगे सुनाऊँगा।

× × × × ×

१६ जुलाई, बुधवार—झब्बु घोड़ेवाले, जो हमलोगों के साथ ताकलाकोट से यहाँ तक आये हुए थे, श्रीकैलास-मंदिर की परिक्रमा में अपनी सवारी देने के लिए राजी न हुए। २५—२६ मील की बहुत बड़ी परिक्रमा करनी पड़ती है। जो लोग इसमें पैदल नहीं चल सकते वे 'दरचन' ही में दो-

दो रुपये में खच्चर की सवारी ठीक कर लेते हैं। हमलोगों ने किसी सवारी द्वारा श्रीकैलासजी के पवित्र मंदिर की परिक्रमा करना उचित नहीं समझा। अतः अपने आवश्यक सामान 'दरचन' ही में रखकर पैदल ही परिक्रमा के लिए निकल पड़े।

परिक्रमा का कठिन मार्ग पर्वतमाला के निम्न भाग में होकर पड़ता है। कैलासजी से, बीहड़ पर्वतों को काटती हुई, 'सिन्ध'-नदी बही है। हमलोग दरचन से एक बजे रवाना होकर, सिन्ध-नदी के किनारे-किनारे, साढ़े तीन बजे के लगभग, लौंडी-गुनमा पहुँचे। जमीन की सतह से ५०० फीट ऊँचाई पर एक बड़ी पहाड़ी के ऊपर 'लौंडी-गुनमा' नामक गुफा-मंदिर स्थित है। बड़ा ही मनोरम स्थान है! सिन्ध-नदी के किनारे एकान्त मंदिर! तपस्या के योग्य रमणीय स्थान!! ईश्वर-प्राप्ति का एक उत्तम साधन!!!

मंदिर के अंदर बुद्ध भगवान् की प्रतिमा रक्खी हुई है। और भी कई लामाओं के मृत मुखियों की मूर्त्तियाँ विराजमान हैं। यहाँ पर भी लोग बुद्ध भगवान् की मूर्त्ति के समीप घी के चिराग जलाकर रखते हैं। यदि किसी के पास घी न हो तो उसे आध टंके में मंदिर के लामा लोगों से एक दीपक जलाने भर घी मिल सकता है। जो कई मूर्त्तियों के पास चिराग जलाना चाहते हैं, वे अधिक दाम देकर अधिक घी भी खरीद सकते हैं।

इस तरफ किसी प्रकार की खेती अथवा कोई ग्राम न होने से लामा लोग यात्रियों के हाथ घी बेचकर अपनी जीविका का प्रबंध करते हैं। अधिकतर गायों और बकरियों के दूध पर ही लामाओं का जीवन निर्भर रहता है। कई श्रद्धालु यात्री मंदिर के नाम से लामाओं को दूध के लिए बकरी या गाय भी प्रदान करते हैं। यदि किसी को बकरी अथवा गाय नहीं मिलती, तो वह एक बकरी के लिए तीन टंके और एक गाय के लिए तीस टंके पुजारी लामाओं को दे देता है, जिनसे आवश्यकतानुसार वे गाय या बकरी खरीद सकें। दान के हिसाब-किताब का एक रजिस्टर होता है, जिसकी समय-समय पर जाँच होती रहती है।

हमारे कई उदार पाठक यह सोचते होंगे कि यदि यहाँ दान की प्रथा है तो काशी, हरद्वार आदि तीर्थों की भाँति यहाँ भी लामा लोग यात्रियों से छीना-झपटी करते होंगे। परन्तु ऐसी बात नहीं है। लामा लोग यात्रियों से बड़ी भद्रता के साथ पेश आते हैं। यहाँ दान देना तो श्रद्धालुओं के हृदय की एक उदारता मात्र मानी जाती है।

यहाँ पर यह भी प्रश्न उठ सकता है—क्या लामा लोग गाय अथवा बकरी के दूध से ही अपना जीवन-निर्वाह कर लेते हैं? पूछताछ से तो यही बात सुनने में आई; परन्तु मेरा अनुभव यह है कि ये लोग दान दिये हुए पशुओं के मांस भी खाते हैं; क्योंकि मंदिर के इधर-उधर कुछ हड्डियाँ भी देखने को मिलीं!!!

इस गुफा में दो बड़ी अच्छी बातें देखने में आईं। गुफा के अन्दर यात्रियों के ठहरने के लिए दो-तीन कमरे बने हुए हैं। एक पुस्तकालय का भी सुन्दर आयोजन है, जिसमें पाली भाषा में लिखी हुई अनेक पुस्तकें आलमारी के अन्दर



[ एक बरसाती पहाड़ी झरना ]

हिफ़ाजत से रक्खी हुई हैं। हाथी का एक बहुत ही बड़ा दाँत भी रक्खा हुआ है।

गुफा का अच्छी तरह दर्शन कर हमलोग 'सिन्ध'-नदी के किनारे-किनारे 'डरफू' गुफा की ओर चले। कैलास-पर्व्वत

हमारे मार्ग से दाहिनी ओर पड़ता है। मार्ग सुहावना है। हमारी बाईं और दाहिनी ओर बड़े-बड़े झरने दिखाई पड़े, जो अधिक ऊँचाई से गिरकर 'सिन्ध'-नदी में मिलते हैं। दोनों तरफ पर्वत-मालाओं के बीच में 'सिन्ध'-नदी के किनारे-किनारे 'डरफू' का मार्ग एक मैदान में होकर गया है। संध्या के आठ बजे हमलोग 'डरफू' गुफा पहुँच गये। यह गुफा 'लौंडी-गुनमा' गुफा से अनुमानतः पाँच मील की दूरी पर है। 'लौंडी-गुनमा' की अपेक्षा यह गुफा बड़ी है और इसमें अधिक लामा रहते हैं। हमलोगों ने इसी गुफा में एक कमरा लेकर विश्राम किया।

हम जिस कमरे में ठहरे हुए थे, वह भी कैलास-मंदिर के ठीक सामने था। यह स्थान यात्रियों के ठहरने के लिए नहीं, बल्कि संसार के माया-मोह से विरक्त साधुजनों की तपस्या के ही योग्य है! सामने ईश्वर के रचना-कौशल की झलक दिखाने-वाले कैलास-मन्दिर का अवलोकन कर हृदय में भक्ति-भाव हिलोरें मारने लगता है, संसार के झंझटों से चित्त उचटकर हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम और त्याग के भाव उत्पन्न होते हैं।

लामा लोग यात्रियों से बातचीत बहुत कम करते हैं; इशारे के सहारे ही वे बहुत काम निकालते हैं। गुफा में हमलोगों के पहुँचने पर उनलोगों ने बड़ी शिष्टता का व्यवहार किया। भोजनादि की कई आवश्यक सामग्री भी उन्होंने दी।

थकावट मिटने पर मुझे यहाँ की गुफा में बड़ा आनन्द मिला। यह आनंद संसार के झंझटों से मुँह मोड़कर विना

कैलास-यात्रा किये मिल ही नहीं सकता। रात में चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। इस पर्वत-स्थली में दिमागी काम करनेवालों के लिए विचार करने को काफी सामग्री मिलती है। एकदम सुनसान! न कहीं कोई आदमी, न कोई पत्ती!! हाँ, सामने पर्वतों पर श्वेत हिम-राशि अवश्य दिखलाई पड़ती है, जो उस परमपिता परमात्मा के विमल महत्त्व का परिचय देती है। इधर के दृश्य अवलोकन कर सांसारिक झमेलों के प्रति एक बार चित्त में वैराग्य का भाव उदित होता है!

× × × × ×

२० जुलाई, वृहस्पतिवार—आज प्रातःकाल हमलोग 'डुरफ' या 'डरफू' गुफा के मंदिर का परिदर्शन करने गये। यहाँ पर हाथ के बने हुए कुछ चित्र देखने में आये। नीचे और ऊपर के दो कमरों में मूर्त्तियाँ रक्खी हुई हैं। ऊपर के हिस्से में महाकालिका की मूर्त्ति सुशोभित है। नीचे के हिस्से में भगवान बुद्ध तथा लामाओं के प्रमुख पुरुषों की मूर्त्तियाँ विद्यमान हैं। यात्री लोग मंदिर में कपड़े, मिसरी, छुहारे तथा द्रव्यादि चढ़ाते हैं। कपड़ों से लामा लोग मंदिर के लिए ध्वजा तैयार करते हैं, अथवा मिलनेवाले श्रद्धालु यात्रियों के गले में आशीर्वाद-स्वरूप कपड़ों के टुकड़े बाँधते हैं।

मंदिर देखकर साढ़े नौ बजे हमलोग 'डुरफ' से आगे बढ़े। इधर मार्ग में सिन्ध-नदी नहीं मिलती। परिक्रमा का मार्ग 'गौरी-कुंड' होकर गया है। मार्ग की चढ़ाई विकट है, पाँच-

पाँच कदम चलने पर दम फूलने लगता है! इधर कोई ऐसी खाई नहीं है जिसमें गिरने का भय हो। हाँ, चढ़ाई में कष्ट अवश्य होता है।

दो घंटे की चढ़ाई के पश्चात् हमलोग 'गौरी-कुंड' पहुँच गये। यह कुंड बर्फ से ढँकी हुई एक प्रसिद्ध झील है। बर्फ इस कुंड में बारहो मास जमी रहती है। बर्फ के नीचे जल भी है। इधर बराबर बादलों के दर्शन होते रहते हैं। जल-वृष्टि तो नहीं होती, पर बर्फ की वर्षा खूब होती है! यात्रियों पर भी बर्फ का आघात होता रहता है! हम लोगों के कनटोप बर्फ की छोटी-छोटी बूँदों से तर हो गये!

'गौरी-कुंड' चारों ओर से घिरा हुआ है। इसके उत्तर तरफ पर्वत फैले हुए हैं। दक्षिण की ओर दूर तक हिमाच्छादित पर्वत-मालाएँ चली गई हैं। इस स्थान पर सर्दी की बड़ी प्रबलता है। हमलोगों को मार्ग में कहीं यहाँ की-सी सर्दी का सामना नहीं करना पड़ा था। यात्रियों के अंग-प्रत्यंग सुन्न हो जाते हैं।

'गौरी-कुंड' कैलास-मंदिर के ठीक नीचे पड़ता है। इस कुंड की परिक्रमा नहीं की जा सकती; क्योंकि एक ओर कैलास-मंदिर इसे ढँके हुए है। हाँ, कुंड को आप पैदल पार कर सकते हैं। हवा का इधर तीव्र वेग है। गल जाने के भय से 'गौरी-कुंड' में कोई यात्री स्नान नहीं करता। मेरे सिर पर भूत सवार हुआ! पत्थर के टुकड़ों के सहारे

मैंने बर्फ को हटाया, इसलिए स्नान के योग्य कुछ जल के दर्शन हुए। हिम्मत बाँधकर मैं कूद पड़ा ! इस धृष्टता का परिणाम यह हुआ कि सारी देह सुन्न हो गई, मानों शरीर में लकवा मार गया हो ! देह पर आरा चला दीजिये; किन्तु उसके कष्ट का अनुभव नहीं हो सकता। मुझमें इतनी शक्ति न रही कि कुंड से बाहर निकलकर वस्त्र पहनूँ। ज्यों-त्यों करके कुंड से बाहर निकलने पर शरीर में इतना जोर न रहा कि भींगे वस्त्रों को उतारकर सूखे कपड़े पहनूँ। मेरे साथियों ने मेरे भींगे वस्त्रों के ऊपर ही मुझे बहुत-से कपड़े ओढ़ा दिये और मुँह में कस्तूरी के टुकड़े कुचलने को डाल दिये। इस प्रकार मुझे कुछ-कुछ गर्मी मिली। तब मैं भींगे वस्त्रों को छोड़कर सूखे वस्त्र पहनने में समर्थ हुआ !

'डुरफ' से यहाँ तक चढ़ाई का मार्ग था, अब उतराई का रास्ता आया। किन्तु कठिनाई वही है, जो चढ़ाई के मार्ग में मिलती है। सायंकाल के चार बजे हमलोग कैलास-मंदिर की परिक्रमा की अंतिम गुफा में, 'जमलिपु' में, पहुँच गये।

'डुरफ' से गौरी-कुंड ५ मील की दूरी पर है। गौरी-कुंड से 'जमलिपु' ६ मील है। यहाँ भी गुफा के मंदिर में लामाओं के मृत मुखियों की मूर्त्तियाँ हैं; किन्तु भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति कहीं भी नहीं है। 'लौंडो-गुनमा' की भाँति यहाँ के मंदिर में भी श्रद्धालु यात्री मूर्त्तियों के पास घी के चिराग जलाते तथा गाय-बकरी चढ़ाते हैं। ऊपर पहाड़ की एक बड़ी चट्टान

है, जिसके अन्दर एक तंग कोठरी बनी हुई है। कोठरी का दरवाजा संकीर्ण है। इस कारण कोई उसमें खड़ा होकर नहीं घुसता। इस स्थान पर हमें एक प्रसिद्ध लामा की मूर्त्ति देखने को मिली, जिसके विषय में कहा जाता है कि मूर्त्तिवाले लामा चट्टानवाली कोठरी में ही रहकर तपस्या करते थे। एक बार जब पहाड़ के ऊपर का हिस्सा धँसने लगा तब उन्हीं लामा ने उसे अपने हाथों के सहारे रोका। उनके पंजों का निशान अब भी मौजूद है! जब पंजे के सहारे रोकने पर पहाड़ का धँसना बंद न हुआ तब तपस्वी लामा अपनी कोठरी छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने के लिए उठ खड़े हुए। इससे उनका सिर चट्टान से टकरा गया। इस प्रकार उनके सिर का भी निशान इस गुफा में मौजूद है! इस घटना की सचाई ईश्वर जाने!

मंदिर की पूरी परिक्रमा तथा कैलास की परिक्रमा भी समात कर हमलोग पाँच बजे 'दरचन' की ओर चल पड़े। दरचन यहाँ से ५ मील की दूरी पर है। सायंकाल आठ बजे हमलोग 'दरचन' पहुँच गये। इस प्रकार हमलोगों ने कुल २४—२५ मील की कैलास-परिक्रमा की। कैलास-परिक्रमा हमलोगों ने डेढ़ दिन में समाप्त की! हूणिये एक दिन में भी समाप्त कर लेते हैं। अधिक श्रद्धालु यात्री भूमि में लेटकर महीनों में कैलास-परिक्रमा समाप्त करते हैं। ये लोग कहते हैं कि लेटकर परिक्रमा करने से हमलोग बराबर कैलासजी को प्रणाम करते जाते हैं।

कैलास की परिक्रमा करनेवाले यात्री, परिक्रमा की स्मृति में, वहाँ से लौटते समय, अपने शरीर में कोई-न-कोई चिह्न अंकित कर लेते हैं। कोई भक्त पत्थर से अपने मुँह का एक दाँत तोड़ डालते हैं! कोई श्रद्धालु अपने सिर के बाल उखाड़कर फेंक देते हैं! अधिक अनुरागी जन किसी ऐसे खाद्य पदार्थ का खाना छोड़ देते हैं जो महत्त्वपूर्ण है, अथवा किसी दुर्गुण का त्याग कर देते हैं। अनेक श्रद्धालु जन तो कभी-कभी किसी अंग-विशेष को ही काटकर शरीर से अलग कर देते हैं! अखाद्य वस्तु अथवा दुर्गुण का त्याग तो प्रशंसनीय है; पर देह को काटना-छाँटना मूर्खता है।

♣

# नवम सोपान

## मानस-सरोवर

२१ जुलाई, शुक्रवार—दरचन से २० मील के लगभग 'तीर्थापुरी' और 'भस्मासुर की ढेरी' नाम के तीर्थस्थान हैं। इधर जाने के मार्ग बड़े भयंकर हैं। ग्रीष्म-ऋतु के कारण पर्वतों की बर्फ पिघलकर जल के रूप में परिणत हो गई थी, इसलिए रास्ते में अनेक तीव्र प्रवाहवाले नाले पड़ते हैं। अन्य स्थानों की अपेक्षा इस तरफ डाकुओं का भय अधिक रहता है। मार्ग की कठिनाइयाँ स्मरण कर मेरे अन्य साथियों ने उस तरफ जाने में असमर्थता प्रकट की। किन्तु मेरा मन न माना—चूँकि ये दोनों तीर्थस्थान बड़े प्रसिद्ध हैं, इसलिए मैंने स्वयं अकेले जाना निश्चित किया।

मैंने पूर्व-परिचित 'गरपन'-महोदय से उधर जाने की इच्छा प्रकट की और मदद माँगी। आपने तत्काल बड़ी प्रसन्नता से मेरे लिए एक खच्चर मँगवाया। तलवार, बरछे और बन्दूक से सुसज्जित दो हूणियों को मेरी रक्षा के लिए तैनात किया। एक दुभाषिये को भी साथ कर दिया।

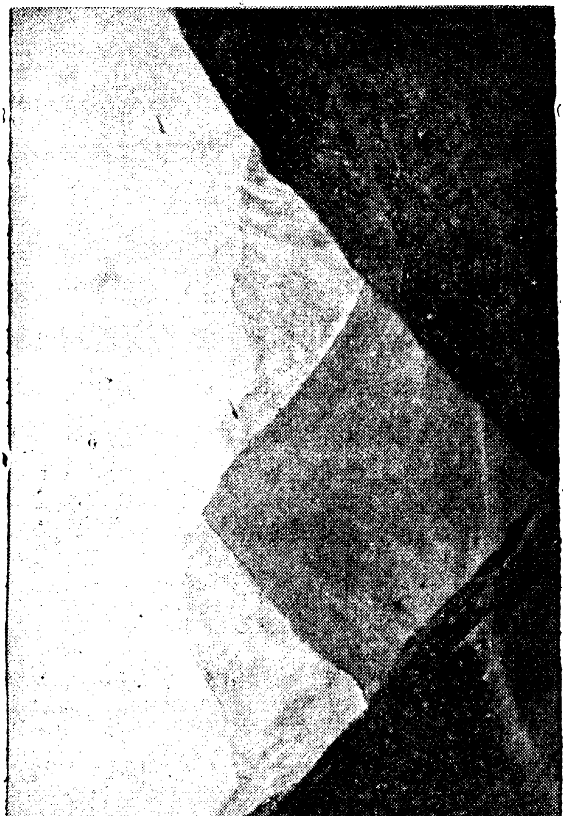
'गरपन'-महोदय की इतनी कृपा प्राप्त करने के अनंतर मैं भस्मासुर की ढेरी और तीर्थापुरी के दर्शनार्थ चल पड़ा। लम्बे-चौड़े मैदान में हरियाली का आनन्द लेते हुए हमलोग ७-८ मील

तक आये। इसके पश्चात् बड़े जोरों से बहता हुआ एक नाला मिला। इसे पार करने के लिए मैंने और मेरे साथियों ने बहुत प्रयास किया; किन्तु सफलता न मिली! पत्थर के रोड़ों से दीवार तैयार कर उसके ऊपर कपड़े तानकर विश्राम-गृह बनाया। आज की रात्रि यहीं, नाले के किनारे हरियाली से लहलहाते हुए मैदान में, कटी।

२२ जुलाई, शनिवार—आज प्रातःकाल ईश्वर की दया से नाला शान्त था। हमलोगों ने इसे तैरकर पार करने का विचार किया। मुझे तैरने का अभ्यास कम था, इसलिए मेरे साथियों ने कमर में रस्सा बाँधकर नाले में मुझे डाल दिया! ज्यों-त्यों करके मैं उस पार पहुँचा। मेरे साथी भी मेरे बाद० ज्यों-त्यों करके उस पार पहुँचे। मार्ग में और भी कई छोटे-मोटे नाले मिले। किन्तु हमलोगों ने इन्हें आसानी से पार कर लिया। सन्ध्या समय हम तीर्थापुरी पहुँच गये। यहीं मैदान में आज विश्राम किया गया।

२३ जुलाई, रविवार—आज प्रातःकाल तीर्थापुरी के मंदिर में हम दर्शनार्थ गये। इसमें बहुत-से लामा रहते हैं। मंदिर में श्रीबुद्ध भगवान् की मूर्त्ति है। मूर्त्ति के समीप लामा लोग घी के चिराग जलाकर रखते हैं। मंदिर के समीप ही एक गरम जल का सोता है, जिसका जल अत्यंत गरम रहता है। यहीं पर एक ऊँचा-सा सफेद टीला है। इसी को लोग 'भस्मासुर की ढेरी' कहते हैं।

इस टीले का नाम 'भस्मासुर की ढेरी' क्यों पड़ा? इस



[ एक भयंकर पहाड़ी घाटी—ऐसे-ऐसे कितने ही बीहड़ पहाड़ी दर्रे, कैलास और मानस-सरोवर की विकट यात्रा में, देख पड़ते हैं। वहाँ केवल ईश्वर ही के सहारे मनुष्य उन दुर्गम मार्गों को पार करता है।]

सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा प्रसिद्ध है। एक बार भस्मासुर

( राक्षस ) ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की। शिवजी ने उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसे वर माँगने की अनुमति दी। राक्षस ने कहा—"देव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि जिसके मस्तक पर मैं अपना हाथ रक्खूँ वह भस्म हो जाय।" राक्षस के कथनानुसार शिवजी ने उसे वरदान दे दिया। अब राक्षस के मन में शैतानी समाई। अपनी वर-सिद्धि की सत्यता के लिए उसने शिवजी के मस्तक पर ही अपना हाथ रखना चाहा ! शिवजी भागकर पृथ्वी के नीचे छिप गये। इसके पश्चात् भस्मासुर पार्वती के निकट पहुँचा; उनसे प्रेम-परिणय की बात कही। पार्वतीजी ने कहा—"यदि तुम मेरे पति बनना चाहते हो तो शंकर की भाँति तांडव-नृत्य कर मुझे रिझाओ।" राक्षस ने तत्काल मस्त होकर नाचना शुरू किया। नाचते-नाचते उसे अपने वर की याद न रही। उमंग में आकर उसने अपना हाथ मस्तक पर रखकर नाचना चाहा। मस्तक पर हाथ पड़ते ही वह स्वयं भस्म हो गया ! कहा जाता है कि 'भस्मासुर की ढेरी' उसी राक्षस की राख है। यात्री लोग इसी ढेरी में से थोड़ी-थोड़ी राख, शिवजी का प्रसाद समझकर, अपने-अपने देश को ले जाते हैं।

'दरचन' से तीर्थापुरी को प्रयाण करते समय मैंने अपने अन्य साथियों को मानस-सरोवर पर ठहरने के लिए कहा था। आज १२ बजे मैदान का मार्ग पकड़कर मैं तीर्थापुरी से मानस-

सरोवर की ओर चल पड़ा। मार्ग में एक स्थान पर विश्राम कर दूसरे दिन प्रातःकाल मानस-सरोवर जाने का संकल्प किया।

२४ जुलाई, सोमवार—आज प्रातःकाल उठकर मानस-सरोवर की ओर चला। मार्ग में कहीं मुसाफिरों के दर्शन न हुए। जब मैं चला तब हवा तेजी से बहने लगी। कुछ-कुछ जलवृष्टि भी होने लगी। सर्दी की प्रबलता बढ़ गई। मुझे बेहोशी-सी आने लगी। प्रायः एक बजे के करीब मैं मानस-सरोवर के किनारे पहुँच गया। वहाँ मेरे अन्य साथी मेरी प्रतीक्षा करते हुए मिले। विचार हुआ कि मुंडन करा कर सरोवर में स्नान का आनंद लूँ। परन्तु इधर नाई कहाँ जो मुंडन कराया जाय! मानस-सरोवर के आसपास खुला हुआ विस्तृत मैदान है। इधर न कोई ग्राम है और न एक भी वृक्ष। हमारे एक देश-बन्धु ने मेरा मुंडन कर दिया। मुंडन के पश्चात् मैं स्नान के लिए मानस-सरोवर में घुसा।

'मानस-सरोवर' न तो 'राक्षस-ताल' की भाँति अत्यन्त ठंडा है और न अधिक लहरों वाला ही। इसमें स्थान-स्थान पर गरम पानी के सोते मिलते हैं। मैं दूर तक जल में चला गया और बड़े आनंद के साथ शरीर मल-मलकर नहाया। सिर के सम्पूर्ण बाल एक साफ़ कपड़े में बाँधकर मैंने सरोवर में फेंक दिया! जो आनंद मानस-सरोवर के स्नान में मिला, वह लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। गोता लगाते ही मार्ग के संपूर्ण कष्ट विस्मृत हो गये; थकावट मिट गई।

स्नान के पश्चात् मेरा विचार श्राद्धादि शास्त्रोक्त क्रियाएँ करने का था। इस काम में हाथ बँटाने के लिए पिथौरागढ़-वासी पंडित श्रीकेदारदत्त पाटनी महोदय बड़े उपयुक्त निकले। आप एक विद्वान् वैद्य तथा सनातनी पंडित हैं।

श्राद्धादि क्रिया से निवृत्त होकर मानस-सरोवर की सैर सूझी। हमारे सभी साथी स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर सैर के लिए तैयार हो गये।

मानस-सरोवर ६०—७० मील की परिधि में एक वृहत् झील है। यह समुद्र की सतह से १४,६०० फीट ऊपर स्थित है। इसकी मनोहरता और अनुपम स्वच्छता का वर्णन मैं क्या करूँ? इसके लिए एक उत्कृष्ट कवि की लेखनी की आवश्यकता है। खेद है कि मैं न कवि हूँ न लेखक!

सन्ध्या का समय है। भगवान् भुवन-भास्कर का तेज क्षीण होता जा रहा है। उनकी मन्द-मन्द किरणें सरोवर के स्वच्छ जल पर पड़कर स्वर्ण की भाँति चमक रही हैं। किरणें जल के साथ तरह-तरह की क्रीड़ा कर रही हैं। सरोवर का जल भी अपनी मंद-मंद लहरों से उछल-उछलकर प्रसन्नता-पूर्वक अपनी नैसर्गिक छटा दिखाने के लिए दर्शकों को निकट बुला रहा है। अहा! कितना सुन्दर दृश्य है! एक ओर कैलास-पर्वत अपनी ऊँची गर्दन उठाकर मानों बड़ी शान से कह रहा है—"क्या मुझसे भी बढ़कर कोई पवित्र स्थान है?" दूसरी ओर 'गुरु-मान्धाता' का २५,३५० फीट ऊँचा पर्वत संसार की ओर निहार

रहा है और न जाने क्या सोचकर सूर्य्य की किरणों के पड़ते ही दमकते हुए स्वर्ण की भाँति चमक उठता है !!

नैसर्गिक दृश्यों से आच्छादित यह मानस-सरोवर तपस्या के लिए परम उपयुक्त स्थान है। यहाँ पर मनुष्य की आत्मा बड़ी स्थिरता से प्रभु के चरणों में ध्यान लगाकर परमात्मा से जा मिलती है। यह देखिये, झुंड-के-झुंड श्वेत पक्षी के रूप में क्या दिखलाई देते हैं? यही जगद्विख्यात राजहंस हैं! इनकी सुरीली और तेज आवाज कह रही है—"दर्शक! तुम हमें क्या देखते हो? जाओ, अपने घर लौट जाओ! हमें स्वतंत्रता के साथ प्यारे मानस-सरोवर की गोद का आनंद लेने दो। जाओ, जाओ, हमें देखने से तुम्हारे हृदय में कोई नई बात नहीं पैदा होगी, हमारे स्वातंत्र्य-पूर्ण आनंद का तुम्हें कदापि अनुभव नहीं हो सकता!"

अहा! पवित्र स्वतंत्रता का सच्चा सुख भोगनेवाले ये राज-हंस स्वच्छ जल में किस प्रसन्नता के साथ तैर रहे हैं! न किसी का भय, न किसी प्रकार का कष्ट! किसी बहेलिये की भी मजाल नहीं जो इनका बध कर सके! इनकी मधुर मंजुल मूर्त्ति हृदय में इनके प्रति अनुराग उत्पन्न कर देती है! भला कौन ऐसा हृदय-हीन मनुष्य है जो इन शुभ्र हंसों पर कंकड़ी फेंकने का भी साहस कर सके। इनकी दिव्य शोभा देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है। जी चाहता है कि बराबर इन्हें देखते ही रहें। कैसी विमल कान्ति है इनकी!



स्वच्छन्दचारी राजहंसों का क्रीडास्थल—'मानस-सरोवर'



मानस-सरोवर के आसपास की पर्वत-माला पर हिमाच्छादित शिखरों का मनोहर दृश्य

'कैलास-यात्रा' नामक प्रसिद्ध पुस्तक के यशस्वी लेखक स्वामी सत्यदेवजी ने 'मानस-सरोवर' के नयन-मन-मोहन दृश्य का अतीव सुन्दर वर्णन किया है। देखिये—

"गुफा से थोड़ी चढ़ाई चढ़ने पर मानस-सरोवर के पुनीत दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस मानस-सरोवर की महिमा बालकपन से सुना करता था, जिसके दर्शनार्थ भारत की करोड़ों आत्माएँ लालायित हैं, जिसके देखने के लिए यूरोप के धुरन्धर विद्वान् दूर-दूर से आते हैं, जिसकी नैसर्गिक शोभा की प्रशंसा सब विदेशियों ने मुक्त कंठ से की है, उस मानस-सरोवर के दर्शन कर मैंने अपने-आपको करोड़ों बार धन्य माना।"

"पाठक! पूर्व की ओर मुँह करके अपने-आपको एक पहाड़ी पर खड़ा कीजिये। वह पहाड़ी टूटी दीवार की तरह ऊँची-नीची आपके दाहिने-बायें चली गई है। आपके पीछे सूर्यदेव अपना दिन का कार्य पूरा कर धीरे-धीरे अपनी शक्तियों को समेट रहे हैं। कृपा कर अपनी दृष्टि दौड़ाइये। आपके सामने सत्तर मील परिधि की एक बृहत् झील है। उसके चारों ओर पर्वत-मालाएँ हैं। वह देखिये, दक्षिण की ओर मान्धाता-पर्वत की बर्फानी चोटियों का प्रतिबिम्ब जल में कैसा मनोहर देख पड़ता है! सामने झील के पूर्वी किनारे पर नीले पर्वतों की कतार कैसी शोभा बढ़ा रही है! उत्तर में कैलासजी अपने साथी-संगियों के साथ विहार कर रहे हैं। सरोवर का नीला-

नीला जल आँखों को क्या ही सुख देता है! वह देखिये, राजहंस, श्वेत, बिलकुल श्वेत, अपनी सुन्दर पतली चोंचों से जल में क्रीड़ा कर रहे हैं! उनका आलाप सुनिये; मस्तानी चाल देखिये; स्वच्छन्दता का विचरना निहारिये; किस निर्भयता से बातें कर रहे हैं! क्या इनको किसी का डर है? बिलकुल नहीं। यहाँ इन्हें पूरी स्वतन्त्रता है, किसी शिकारी के निशाने का भय नहीं। ये मनुष्यों की तरह बातें करते हैं। कैसी बड़ी आवाज है! इनके झुंड जल पर क्या मजे में तैर रहे हैं! आहा! हा! हा! क्या ही अनुपम छबि है!"

"मानस-सरोवर के एक किनारे पर, जहाँ स्नान करने का सुभीता था वहीं, ठहर गये। सामने भास्कर महाराज खिले चेहरे से हँस रहे थे। निर्मल, स्वच्छ जल की लहरें मेरे पाँवों के पास खेल रही थीं। यह दिन भी मेरे जीवन में बड़े पुण्य का था। कपड़े उतार दिये; मानस-सरोवर के शीतल जल में प्रवेश किया। आज बहुत वर्षों की इच्छा पूर्ण हुई। परमात्मा को बार-बार धन्यवाद दिया। झील बहुत गहरी है; जल बिलकुल साफ है।"

"श्रीकैलासजी से मानस-सरोवर आने में भूमि नीची होती जाती है। मानस-सरोवर अधित्यका (तराई) १५,००० फुट की ऊँचाई पर है। इसका फैलाव बहुत दूर तक है।"

× × × ×

मानस-सरोवर के आसपास जितने पदार्थ दृष्टिगत होते हैं, यात्री उन्हें परम पवित्र मानते हैं। मछलियाँ भी पूज्य दृष्टि से देखी जाती हैं। पानी की लहरों से उछलकर बहुत-सी मछलियाँ सरोवर के किनारे भूमि पर आ गिरती हैं। जल से बाहर आ जाने के कारण वे मर जाती हैं। मरी हुई मछलियों को यात्री अपने-अपने देश को ले जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि यदि किसी को भूत-प्रेत की बीमारी हो तो इन मछलियों को रोगी के सामने जलाने से भूत-प्रेत भाग जाते हैं! उधर के घासों में भी लोग ऐसा ही चमत्कार समझते हैं। क्यों न हो, भूत-प्रेतों के स्वामी कैलासपति महादेव ही तो हैं!

दुर्भाग्यवश हमलोगों के पास भोजनादि की काफ़ी सामग्री नहीं थी, अन्यथा यहाँ पर कुछ दिनों तक निवास कर प्रकृति-देवी की रमणीय गोद में अनिर्वचनीय सुख का उपभोग करते!

♣

# दशम सोपान

## जन्मभूमि की ओर

२५ जुलाई, मंगलवार–प्रातःकाल उठकर हमने फिर मानस-सरोवर में स्नान किया। तत्पश्चात् साथियों-सहित वापस ताकलाकोट की ओर चल पड़े। मार्ग में बहुत दूर तक राक्षस-ताल और पूज्य मानस-सरोवर के दर्शन होते रहे।

१६ जुलाई को हम कुल्ला-धुरका से राक्षस-ताल आये थे। आज यहाँ तीन बजे हम फिर आये। यहीं पर विश्राम कर साथियों-सहित रात बिताई।

कुल्ला-धुरका मानस-सरोवर से ११ मील समझिये। कुल्ला-धुरका पहुँचने पर खासी जल-वृष्टि हुई, आसपास के पर्वतों पर बर्फ का ढेर लग गया। शीत का प्राबल्य बढ़ा। हममें से अनेक बेहोश हो गये! ईश्वर का ध्यान करते हुए किसी प्रकार रात बीती।

२६ जुलाई, बुधवार–आज सुबह पाँच ही बजे कुल्ला-धुरका से आगे बढ़ने का विचार था। किन्तु हमलोगों के एक खच्चर की चोरी हो जाने से आगे बढ़ने में देर हुई। ताकलाकोट से जिन मार्गों द्वारा हमलोग इधर आगे आये, उन्हीं मार्गों से वापस होते हुए 'तोया' पहुँचे। 'तोया' में सरदार जोरावरसिंह

सिक्ख की समाधि है। सन् १८४१ ई० में सरदार जोरावरसिंह, काश्मीर-नरेश की ओर से फ़ौजी अफसर होकर, तिब्बतियों पर अधिकार जमाने के लिए उनसे लड़ने आये थे। युद्ध में वे तिब्बतियों द्वारा मारे गये। यहीं 'तोया' में उनकी समाधि बनी। ताकलाकोट, तोया से दो मील की दूरी पर है। सायंकाल में साथियों-सहित हम ताकलाकोट-मंडी पहुँच गये। मंडी में व्यापारियों की बड़ी भीड़ थी। श्री कैलास और मानस-सरोवर की यात्रा निर्विघ्न समाप्त कर सकुशल लौटने पर परिचित प्रेमी व्यापारी बंधुओं ने हमलोगों को बधाई दी। अपनी ओर से यथाशक्ति उन लोगों ने हम लोगों का आदर-सत्कार किया। आज रात यहीं बीती।

२७ जुलाई, वृहस्पतिवार—तिब्बत-प्रान्त में कैलास, मानस-सरोवर और तीर्थापुरी के अतिरिक्त 'खोचर' नामक एक और तीर्थस्थान है। ताकलाकोट-मंडी से यह स्थान ९ मील की दूरी पर है। 'खोचर' तीर्थ के दर्शनार्थ हमलोग प्रातःकाल पैदल उधर ही चल पड़े। मार्ग 'कर्नाली'-नदी के किनारे-किनारे होकर गया है। ताकलाकोट से दो मील आगे बढ़ने पर मटर, जौ आदि के लहलहाते खेत मिले। इधर जल-वृष्टि नहीं होती। हाँ, नदियों से नहर निकालकर खेतों की सिंचाई की जाती है। इस तरफ गुफानुमा मकान हैं। पत्थरों तथा घास द्वारा तैयार किये गये अनेक छोटे-छोटे मकान बड़े सुहावने देखने में आये।

एक बजे हमलोग 'खोचरनाथ' पहुँच गये। इधर की आबादी अच्छी है। कर्नाली-नदी के तट पर श्री खोचरनाथ का प्रसिद्ध मंदिर स्थित है। यह मंदिर पत्थर का है। चारों ओर लाल रंग से पुता हुआ है। मंदिर के अंदर एक बड़े कमरे में बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ, चार फ़ीट की ऊँचाई वाले पीतल के सिंहासन पर, विराजमान हैं। सिंहासन में कमल के चित्र अंकित हैं। यहाँ की-सी बड़ी मूर्त्ति आजतक मैंने कहीं नहीं देखी थी। इस कमरे में कुल तीन मूर्त्तियाँ हैं, जिन्हें लामा लोग राम, लक्ष्मण और सीता की मूर्त्ति बतलाते हैं! इस देश में रामचन्द्रजी की कोई पौराणिक कथा नहीं है, जिसके आधार पर उनकी मूर्त्तियाँ रक्खी जा सकें। मालूम होता है, इधर के स्वार्थ-परायण लामाओं ने भोले भक्तों से दक्षिणा पाने के लिए यह चाल सोची है! कुछ लोगों का कहना है कि गौतम बुद्ध और उनके शिष्यों की मूर्त्तियाँ हैं। जो हो, पर अन्य स्थानों की अपेक्षा इधर के लामाओं में धन प्राप्त करने का कुछ लोभ आ गया है। किन्तु वे यात्रियों से जबरदस्ती कुछ भी नहीं लेते।

यहाँ भी मूर्त्तियों के सामने चिराग जलते रहते हैं। मंदिर के कमरों में चारों तरफ अन्धकार है। विना रोशनी का सहारा लिये पैर नहीं बढ़ाया जा सकता। लामाओं से सुनने में आया कि यदि मूर्त्तियों के पास के चिराग बुझ जाते हैं, तो स्वयं पशुपतिनाथ महादेव नैपाल से आकर दीपक जला जाते हैं। वाह, कैसी बढ़िया चंडूखाने की गप्प है!

मूर्त्तियों के अतिरिक्त दीवारों पर भी तरह-तरह के चित्र बने हुए हैं। इस कमरे में एक पुस्तकालय भी है। कमरे से बाहर पत्थर की बहुत-सी मूर्त्तियाँ हैं। कमरे की बगल से होकर ऊपर को एक अत्यन्त अँधेरी सीढ़ी गई है, जिसके ऊपर के कमरे में एक काली-सी मूर्त्ति है। इस कमरे के अतिरिक्त मंदिर के दूसरे खंड में भी मूर्त्तियों के रखने का स्थान है।

यहाँ पर बहुत-से लामा अपने चेलों के साथ गद्दी पर बैठे हुए पूजा कर रहे थे। उन लोगों के सामने फर्श पर 'भैरवी-चक्र' के आकार में एक चित्र अंकित था, जो भिन्न-भिन्न रंगों से रँगा हुआ था!। उसके चारों ओर बहुत-से दीपक जल रहे थे। कुछ आदमी मुँह से बाजा बजा रहे थे। एक आदमी झाल बजा रहा था। बीच-बीच में ठहरकर वे मंत्र पढ़ते जाते थे।

इस कोठरी के बाद दूसरी कोठरी में भी पत्थर की बहुत-सी मूर्त्तियाँ थीं। एक स्थान पर दो मूर्त्तियाँ देखने में आईं, जिन्हें लामाओं ने 'महाकाली' और 'महाकाला' की प्रतिमा बतलाई। 'महाकाला' का नाम सुनकर मुझे हँसी आई; क्योंकि इससे पहले कभी ऐसा नाम सुनने में नहीं आया था! 'महाकाल' तो सुना था।

इधर के हूणिये बहुत गंदे होते हैं, स्नान तो ये कभी करते ही नहीं। साथ ही, शौच के बाद जल का उपयोग भी नहीं करते हैं! इन्हीं के कारण मंदिर के अहाते के अंदर इधर-उधर मल-मूत्र के भी दर्शन हुए !!! यहाँ के मंदिरों में हमारे देश की

भाँति जूता पहनकर भीतर घुसने की मनाही नहीं है। मंदिर में लोग दोकचे (तिब्बती जूते) पहनकर जाते हैं। जूता पहनकर पूजा भी करते हैं! इधर के लोगों की गन्दगी का एक विशेष कारण कठोर सर्दी का होना है। ठंडक के आधिक्य के कारण किसी प्रकार अपने नित्य-कर्म कर लेते हैं। इनकी मलिनता अत्यंत घृणित है।

दर्शन से निवृत्त होकर ८ बजे हमलोग ताकलाकोट वापस आ गये। आज दिन-भर में १८ मील चलना पड़ा।

२८ जुलाई, शुक्रवार—आज कई भोटिया बन्धुओं के आग्रह से 'ताकलाकोट' ही में ठहरना पड़ा। अत्यंत थकावट के कारण हमलोगों को भी विश्राम की आवश्यकता थी। अतः आज का दिन भोटिया बंधुओं के आतिथ्य में ही बीता।

× × × ×

तिब्बत की सीमा पर आकर अब हम अपने देश को लौट रहे हैं। पीछे घूमकर फिर कुछ कहने का अवसर नहीं मिलेगा। अतः मैं पाठकों की सेवा में तिब्बत-सम्बन्धी कुछ आवश्यक विवरण उपस्थित करता हूँ—

'तिब्बत' संसार के अन्य देशों की अपेक्षा अधिक ऊँचाई पर स्थित है। इसकी सम्पूर्ण ऊँचाई १५००० फीट है। धातुओं की खानें इधर अधिक मिलती हैं। मानस-सरोवर के आसपास सोने की भी खानें हैं। किन्तु इधर के निवासी, अशिक्षित होने के कारण, इनसे कोई लाभ नहीं उठाते। सोने-चाँदी की खानें इनके लिए 'अन्धे के हाथ में बटेर' के सदृश हैं! तिब्बतियों

की मुख्य व्यापारिक चीजें नमक, ऊन और सुहागा हैं। लामाओं के अतिरिक्त इधर पढ़े-लिखे मनुष्य नहीं मिलते। अशिक्षितों में जो मनुष्य कुछ अधिक होशियार होता है, उसे लोग 'अमजी' कहते हैं। 'अमजी' वैद्य को कहते हैं। इधर के 'अमजी' वैद्य तो नहीं होते; पर दो-चार जड़ी-बूटियों के नुस्खे अवश्य जानते हैं। इन लोगों की जड़ी-बूटियाँ भारतवासियों के काम में नहीं आ सकतीं; शीत-प्रधान देश वाले ही उनसे लाभ उठा सकते हैं।

इस देश के स्त्री-पुरुष एक ही प्रकार की चाल-ढाल और वेश-भूषा रखते हैं। स्त्री हो चाहे पुरुष, दोनों अपने सिर के बाल गूँथे रहते हैं। एक ही प्रकार का ओवर-कोट, एक ही प्रकार का जूता, एक ही प्रकार का पाजामा। इनमें गंदगी अधिक होती है। इनके बर्तन भी बराबर जूठे रहते हैं।

एक बार एक हूणिये ने मुझे चाय की दावत देने के लिए अपने यहाँ बुलाया। मैं चाय तो क्या पीता; हाँ, जरा हूणियों के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके यहाँ चला गया। मेरे पहुँचने पर उसने एक चाँदी के जूठे बर्तन में थूक कर उसे अपने कोट से पोंछ डाला और मुझे उसमें चाय देने लगा! मुझे बड़ी घृणापूर्ण हँसी आई, जब उसने बर्तन स्वच्छ करने के लिए थूक का व्यवहार किया! राम! राम!! इनमें इतना भी ज्ञान नहीं कि जूठा किसे कहते हैं और किसे साफ कहते हैं! मैंने उससे कह दिया, मैं चाय नहीं पीता। इस प्रकार बेचारे का दावत का उत्साह भंग हो गया।

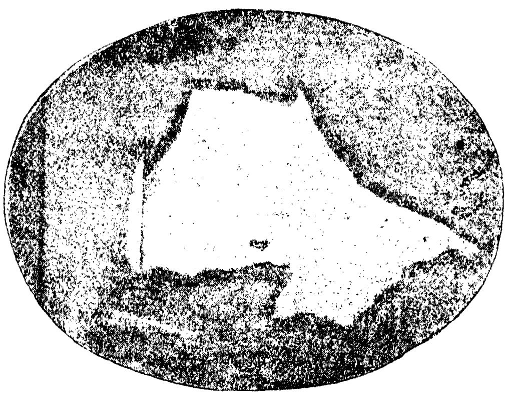
तिब्बती हूणियों को जब कहीं जाना होता है, तब अपने ओवर-कोट अथवा बिछावन में, मार्ग में खाने के लिए, मांस रख लेते हैं। जब चाहते हैं, राह चलते हुए खाते जाते हैं। शौचादि की जरूरत पड़ने पर, जहाँ इच्छा होती है वहीं, बैठ जाते हैं। फिर वहीं पर मांस निकाल-निकालकर खाने भी लगते हैं! शिव !! शिव !!!

तिब्बती लोग भूत-प्रेत से बहुत डरते हैं। इसके भय से बचने के लिए, छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़ों पर 'ॐ माने पद्मे हुंग' का मंत्र खोदकर अधिक-से-अधिक संख्या में गाँवों के बाहर ढेर लगाये रहते हैं। इनका विश्वास है कि उपर्युक्त मंत्र के प्रभाव से भूत-प्रेत गाँव से भाग जाते हैं। पर्वत के चढ़ाई-उतराई वाले मार्गों में मंत्र खुदे हुए ऐसे पत्थर के टुकड़े अधिक मिलते हैं। इन टुकड़ों के साथ लकड़ी में बँधी हुई चीथड़ों की झंडियाँ भी देखने को मिलती हैं। तिब्बती हूणियों को जब कभी ऐसे मार्ग मिलते हैं, जहाँ भूत-प्रेत भगानेवाले पत्थर के टुकड़े पड़े हों, तब वे बड़े जोर से 'वो—सो—सो—सो' कहकर चिल्ला उठते हैं, और मार्ग में से पत्थर का कोई टुकड़ा उठाकर उन मंत्रांकित पत्थर के टुकड़ों के बीच में जोर से पटक देते हैं। साथ ही, कपड़े के चीथड़ों की ध्वजा भी चढ़ाते हैं और मंत्रांकित पत्थर के टुकड़ों को जमीन पर माथा टेककर प्रणाम भी करते हैं!

तिब्बत में अधिकांश लामा लोग रहते हैं। ये लोग अपने सिर के बाल मुँड़ाये रहते हैं। हाथ में माला लिये रहते हैं।

इनमें गुरु-भक्ति अधिक होती है। 'दलाई लामा', जो तिब्बत के हाकिम होते हैं, इनके लिए परम पूज्य हैं। 'दलाई लामा' के शरीर का यदि ये कोई पुराना वस्त्र भी पाते हैं, तो उसे आपस में टुकड़े-टुकड़े कर बाँट लेते हैं! यदि सिर के बाल, नाखून आदि भी मिलें तो उन्हें भी ये आपस में श्रद्धा-पूर्वक बाँट लेते हैं!

तिब्बत के पर्वतीय ग्राम बड़े सुंदर बनाये जा सकते हैं। हूणियों में भी भारतीय सभ्यता फैल सकती है। इधर के उजाड़ प्रदेश गुलशन बन सकते हैं!



[ पहाड़ से टूटकर गिरा हुआ बर्फ का ढोंका ]

किन्तु यह सब तभी संभव है जब इधर किसी सभ्य वा शिक्षित जाति का आगमन हो। पढ़े-लिखे भारतीय लोग इधर आ आकर बड़े-बड़े ग्राम बसावें, शिक्षा-प्रचार करें, स्वच्छता सिखावें और एक अत्यन्त वीर जाति को मोहनिद्रा से जगावें। बुद्धि और विचार के बल से बहुत-कुछ किया जा सकता है।

यात्रियों को इस बात की अधिक सावधानी रखनी चाहिये कि पर्वतीय मार्गों में जब कहीं सवारी ले जाने की आवश्यकता पड़े, तब सवारी से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का निपटारा 'ताकलाकोट' के भोटियों से ही कर लें। अन्यथा तिब्बती हूणियों से वास्ता पड़ने पर बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। मजदूरी तभी देनी चाहिये, जब हम अपनी यात्रा समाप्त कर लें और सवारी के स्वामियों की कोई आवश्यकता न रह जाय। समय-समय पर रास्ते में भोटियों को सत्तू आदि दे देने से वे यात्रियों से बड़े प्रसन्न रहते हैं और उनका कहना भी प्रेम के साथ मानते हैं।

× × × × ×

भारतवासियों के लिए इधर के मार्ग बड़े कष्टदायक हैं। इधर कहीं साग-भाजी या तरकारी के दर्शन भी नहीं होते। मनचले यात्रियों को अपने साथ में अचार, पापड़, बड़ियाँ, तिलौड़ियाँ आदि नमकीन चीजें लेकर चलना चाहिये। निरामिष-भोजी यात्रियों को भोजन-सम्बन्धी बड़े कष्ट झेलने पड़ते हैं। ऐसे अवसर पर संतोष ही से काम लिया जाता है। खास तिब्बत अथवा मानस-सरोवर-कैलास के यात्रियों को निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये—

(१) परिश्रमी और साहसी होना आवश्यक है।

(२) खाने-पीने में पूर्ण स्वतंत्र होना चाहिये।

(३) भूख के कष्ट सहने के लिए संतोषी होना चाहिये।

( ४ ) शरीर से हृष्ट-पुष्ट होना चाहिये ताकि अवसर पड़ने पर डाकुओं के मुकाबले में भिड़ सकें ।

( ५ ) शस्त्र-धारी होना, कम-से-कम दस आदमियों के एक दल के साथ चलना, आवश्यक है । इसके लिए विश्वास-पात्र भोटिया व्यापारियों से हेल-मेल बढ़ाना चाहिये । टोटेदार बन्दूक, पिस्तौल आदि पास में होना अनिवार्य्य है ।

( ६ ) शीत-प्रधान स्थानों में आत्म-रक्षा के लिए खेमे और रावटियों का रखना भी आवश्यक है ।

( ७ ) सर्दी से बचाव के लिए पास में ऊनी वस्त्रों का काफी प्रबंध होना चाहिये । अलमोड़ा से आगे बढ़ने पर पर्व-तीयों द्वारा पहाड़ी वस्त्रादि का प्रबंध किया जा सकता है ।

( ८ ) पास में कस्तूरी इत्यादि, शरीर में गर्मी लानेवाली चीजें, होनी चाहिये ।

( ९ ) पास में वेसलिन, मोम आदि का होना अत्यावश्यक है, ताकि बर्फीले रास्ते में शरीर के किसी भाग के फट जाने पर स्निग्ध लेप लग सके ।

(१०) चाय, चीनी, मिसरी, काली गोलमिर्च, छुहारे, खटाई, नीबू, गरी आदि भी पास हो तो अच्छा है ।

(११) इन आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त अपने-अपने सुवि-धानुसार पास में आँटा, दाल, सत्तू, गुड़, चना, चावल आदि खाद्य पदार्थ भी रखने चाहिये । यदि अग्नि का काफी प्रबंध हो सके तो भोजन बनाने में बड़ी सुविधा रहती है ।

× × × ×

२६ जुलाई, शनिवार—अपने देश की ओर लौटने के लिए हमलोगों ने आज प्रातःकाल तैयारी की। हमलोगों के जाने का समाचार सुनकर अनेक भोटिया-बन्धु पास आये और अपनी-अपनी राम-कहानी सुनाने लगे। खास तौर से एक बात के लिए इन लोगों ने मुझसे बड़ा आग्रह किया। वह यह है—

"अपने देश में लौटकर 'निरपनियाँ' के विकट मार्ग की ओर बृटिश सरकार तथा धर्मप्रधान भारत के उदार सज्जनों का ध्यान आकर्षित कीजियेगा, ताकि इधर के पथिक भीषण कठिनाइयों से छुटकारा पावें।"

भोटिया-बन्धुओं के इस आग्रह ने मेरे हृदय को तड़पा दिया। 'निरपनियाँ' की दुःखद कहानी मैं किसको सुनाऊँ? मेरा अधिकार नहीं कि बृटिश सरकार अथवा उदार धनाढ्य भारतवासियों का ध्यान इधर आकर्षित कर भोटियों के कष्ट-निवारण में सहायक होऊँ। यहाँ कोई सुननेवाला नहीं!

भोटिया-बन्धुओं को तरह-तरह के आश्वासन देकर और सभी बन्धुओं से 'वन्देमातरम्' कहकर हम आठ बजे प्रातःकाल ताकलाकोट से चल पड़े। मार्ग में मेरे हृदय में भोटियों के प्रति बड़ा अनुराग उत्पन्न हुआ—अहा! ये कितने सीधे-सादे, भोले-भाले मनुष्य हैं—शिक्षा से वंचित रहने पर भी इनमें अनेक दैवी गुणों का समावेश है!

सचमुच भोटिया-बन्धुओं ने कैलास-यात्रा में मेरी जो सहायता की, उसको मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ! क्या उनसे मैं उऋण हो सकता हूँ? कदापि नहीं।

हमलोगों का मार्ग कुछ दूर तक 'कर्नाली'-नदी के किनारे-किनारे होकर गया है। भाई श्रीनन्दराम गर्ब्याल और बन्धुवर श्रीमानसिंह-कल्याणसिंह की उदारता से हमलोगों के लिए सवारी मिल गई थी।

जिस प्रकार कैलास की ओर जाते समय हमलोगों को 'लिपुधूरा' पार करने में कठिनाई उठानी पड़ी, उसी प्रकार लौटते समय भी मार्ग में बड़े-बड़े कष्ट झेलने पड़े।

'पाला' नामक स्थान से होते हुए हमलोगों ने 'लिपु' की चढ़ाई प्रारम्भ की। एक बजे के करीब 'लिपु' की चोटी पर पहुँच गये, तिब्बत की सीमा का यहीं से अन्त समझिये। यहाँ से आगे भारतवर्ष की सीमा का आरम्भ हो जाता है।

'लिपु' की चोटी पर खड़ा होकर मैंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। पीछे छुटे हुए पर्वतों में स्वतन्त्रता का जो आनन्द लिया था, स्वातन्त्र्य-मिश्रित जल-वायु का जो रसास्वादन किया था, उसकी स्मृति अब सताने लगी!

स्वतन्त्रता का जो आनन्द हमें कैलास के पद-प्रान्त में और मानस-सरोवर के पवित्र तट पर मिला, राजहंसों ने स्वाभाविक स्वतन्त्रता की जो सुमधुर स्वर-लहरी सुनाई, वह क्या कभी हम भूल सकते हैं? भारत में वह सुखानुभूति कहाँ? वह

अनन्त प्राकृतिक वैभव, वह नयन-शीतलकारी मनोरम दृश्य, वह पर्वतराज हिमालय का अद्भुत् ऐश्वर्य जिसने नहीं देखा, उसने नर-तन पाकर एक अगाध आनन्द-भंडार से अपने को बरबस वंचित रक्खा!

तिब्बत और भारत की सीमाओं के सन्धिस्थल पर विराजमान उस पर्वत-शिखर के ऊपर खड़े होकर हम स्वामी रामतीर्थ का यह पद गुनगुना रहे थे—

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह बोस्ताँ हमारा॥"

'वन्देमातरम्' की घोर ध्वनि से उस शून्य पहाड़ी प्रान्त को गुँजाकर हमने 'लिपु' की चोटी से उतरकर भारत की सीमा में पदार्पण किया। सामचीन, डुंग-कांग, यारखाँ आदि स्थानों से होते हुए हमलोग सायंकाल में 'कालापानी' पहुँच गये। आज की रात यहीं पर विश्राम करने में बीती।

'कालापानी', ताकलाकोट से, १७ मील की दूरी पर है। यहाँ आ जाने पर हमें स्वदेशी (भारतीय) जल-वायु का आभास मिला। यहाँ पर रसोई बनाने के लिए सब सामग्रियाँ मिल गईं। आज बहुत दिनों के पश्चात् हमलोगों को फिर स्वदेशी (भारतीय) भोजन मिला।

खा-पीकर सोते समय सम्पादकाचार्य द्विवेदीजी के ये प्रिय पवित्र पद्य मेरे मस्तिष्क में मँड़लाने लगे—

जहाँ हुए व्यास मुनिप्रधान; रामादि राजा अति कीर्त्तिमान।
जो थी जगत्पूजित धन्य-भूमि; वही हमारी यह आर्य-भूमि॥
नये-नये देश जहाँ अनेक; जीते गये थे नित एक-एक।
जो थी जगत्पूजित भाग्य-भूमि; वही हमारी यह आर्य-भूमि॥
विचार ऐसे जब चित्त आते; विषाद पैदा करते सताते।
न क्या कभी देव दया करेंगे? न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे?

मैं मन-ही-मन गुनगुनाने लगा—

जै-जै प्यारे देश हमारे, तीन लोक में सबसे न्यारे।
हिमगिरि-मुकुट मनोहर धारे, जै-जै सुभग सुवेश॥ जै०—
बल दो हमें ऐक्य सिखलाओ, सँभलो देश होश में आओ।
मातृभूमि-सौभाग्य बढ़ाओ, मेटो सकल कलेश॥ जै०—

× × × × ×

३० जुलाई रविवार—आज हमलोग प्रातःकाल 'कालापानी' से १० मील आगे चलकर 'गर्बेयांग' पहुँच गये। बहुत-से भोटियों के—व्यापारिक कार्य्यवश—ताकलामंडी चले जाने के कारण ग्राम जनशून्य मालूम पड़ता था। श्रीमान् पंडित लक्ष्मीदत्तजी हमलोगों से प्रेमपूर्वक मिले। चिरस्मरणीय आतिथ्य-सत्कार किया। पंडितजी के उपकार मेरे कैलास-यात्रा के संस्मरणों में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे।

आज कुछ जल-वृष्टि हुई, जिससे सर्दी की अधिकता बढ़ गई। किन्तु हमलोग एक सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये थे।

३१ जुलाई, सोमवार—आज प्रातःकाल पंडित लक्ष्मीदत्तजी से ( गर्बेयांग से ) बिदा होकर, 'बुदकी' की चढ़ाई समाप्त कर, सायंकाल में हमलोग 'मालपा' पहुँच गये। इधर इन दिनों खूब वर्षा हो रही थी। लहलही हरियाली खूब दिखलाई पड़ी। किन्तु इधर का मार्ग पहले से कुछ अधिक भयंकर हो गया था। जाने के समय इस मार्ग में उतना कष्ट न हुआ था जितना वापस आने के समय हुआ!

१ अगस्त, मंगलवार—आज हमलोग प्रातःकाल 'मालपा' से बिदा होकर, 'निरपनियाँ' के विकट मार्ग का सामना करते हुए, संध्या-समय 'गल्ला' पहुँच गये। 'निरपनियाँ' के दुर्गम मार्ग के कष्टों की कहानी पहले ही सुना चुका हूँ। हाँ, 'गल्ला' पहुँचने पर आज बहुत दिनों के बाद कद्दू और आलू के दर्शन हुए!

२ अगस्त, बुधवार—भोजनादि से निवृत्त होकर हमलोग आज प्रातःकाल 'गल्ला' से बिदा हुए। 'रुंग-लुंग' की चढ़ाई और उतराई बड़ी विकट है। उतराई के मार्ग में कुछ आगे बढ़ने पर, दो मील की दूरी पर, सलामी उतार मिलता है। यहीं पास में 'सिरदाङ्ग' एक स्थान है, जहाँ श्रीचंदनसिंहजी ईसाई पादरी हैं। उन्होंने फलादि से हमलोगों का बड़ा सम्मान किया। उनके सुन्दर बगीचे में बहुत अच्छे-अच्छे सेब और नासपाती देखने में आये।

'सिरदांग' में ईसाइयों का एक गिरजाघर भी है। पादरी साहब



[ लहलही हरियाली का पहाड़ी दृश्य ]

से यह भी मालूम हुआ कि चौंदास में ५०-६० मनुष्य ईसाई हैं।

अहा ! ईसाइयों में संगठन की शक्ति कितनी प्रबल है ! बीहड़ पहाड़ी प्रान्तों में भी ईसाई धर्म का झंडा फहरा रहे हैं ! यहाँ तक कि पहाड़ी प्रान्तों के भोलेभाले हिन्दू भी इन ईसाई भाइयों के धर्मानुयायी होते जा रहे हैं। यदि आज हिन्दू-जाति कमर कस ले कि संसार में हम भी अपनी धार्मिक संस्कृति और सभ्यता फैलावेंगे, तो भूमंडल की अधिकांश जनता एकमात्र हिन्दू-धर्म ही की ओर दौड़ी चली आवेगी। किन्तु आलस्य की गोद में बेखबर पड़े हुए, फक्किका के फेर में फँसे हुए, 'तू-तू-मैं-मैं' की थुक्का-फजीती में परेशान रहनेवाले हिन्दू शायद अभी एक सदी और सोवेंगे !!!

. × × ×

तिज्या-वासी बन्धुओं से, कैलास जाते समय, मैंने वादा किया था कि लौटती बार मैं उनलोगों का आतिथ्य ग्रहण करूँगा। किन्तु खेद है कि मैं उधर न जा सका। फिर भी सिरदांग में मेरे आने का समाचार सुनकर अनेक तिज्या-वासी भाई, श्रीकेसरसिंहजी के साथ, मुझसे मिलने आये। पहाड़ी भाई कितने सरल और सहृदय होते हैं !

श्रीकेसरसिंहजी बड़े प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति हैं। इन्होंने यद्यपि कहीं 'ट्रेनिंग' नहीं पाई है, तथापि ये अध्यापन-कार्य में अद्भुत चमत्कार दिखलाते हैं। इस प्रान्त के इन्सपेक्टर ने इनके अध्ययन-कार्य पर मुग्ध होकर इन्हें प्रशंसापत्र दिया है कि "श्रीकेसरसिंह में शिक्षा देने का प्राकृतिक गुण है।"

पादरी महाशय से निपटकर मैं 'शोसा' चला। तिज्या-वासी बन्धु बड़े प्रेमी निकले। सिरदांग से 'शोसा' तक वे साग्रह मुझे पहुँचाने आये। अपने साथियों-सहित मैं संध्या-समय 'शोसा' पहुँचा। यहाँ मैं श्रीखुशहालसिंहजी का अतिथि हुआ। रात यहीं बीती।

'गल्ला' से 'शोसा' ६ मील दूर है।

३ अगस्त, वृहस्पतिवार—आज प्रातःकाल भोजनादि से निवृत्त होकर हमलोग 'शोसा' से चल पड़े। मार्ग जटिल है। जल-वृष्टि के कारण ऊपर से पहाड़ के बहुत-से टुकड़े गिर-गिरकर नीचे आ पड़े थे, जिनसे मार्ग दुरूह हो गया था। फिर भी ईश्वर की कृपा से सन्ध्या-समय हमलोग 'खेला' पहुँच गये। रात सानन्द बीती।

♣

# एकादश सोपान

## हिमालय के अंचल से बिहार की गोद में

अब, हम हिमालय के अंचल से निकलकर मातृभूमि की गोद में जा रहे हैं। 'खेला' से ही अपने देश (भारत) की तरह गर्मी, मच्छड़ इत्यादि मिलते हैं। पर्वतीय आनन्द का यहीं से अवसान हो जाता है। इस तरफ साग-भाजी, भोजन-सामग्री आदि सुगमता से मिलती है। अतः किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ा।

४ अगस्त, शुक्रवार—आज प्रातःकाल 'खेला' से १० मील चलकर धारचूला पहुँचे। 'खेला' से तीन मील तक उतराई का मार्ग मिलता है। इसके बाद कुछ दूर तक मैदान-ही-मैदान है। फिर उतार पड़ता है। बहुत दिनों के बाद आज इधर मकई के हरे-भरे खेत दिखलाई पड़े।

बन्धुवर श्रीलोकमणिजी वैद्य हमलोगों की बाट देख रहे थे। इन्हींके यहाँ आज हमलोगों का आतिथ्य-सत्कार हुआ। पंडितजी बड़े सज्जन और मिलनसार व्यक्ति हैं। कैलास-यात्रा के समय आपने जो उपकार मेरे साथ किये वे मुझे सर्वदा स्मरण रहेंगे। पहाड़ी प्रान्तों में आपकी चिकित्सा की बड़ी धूम रहती है।

श्रीरुमादेवीजी कैलास जाते समय हमलोगों को कुछ आगे तक पहुँचाकर धारचूला लौट आई थीं। यहाँ आने पर उन्हें लाहौर-कालेज के प्रोफेसरों का दल मिला, जिसके साथ वे भी कैलास-यात्रा के लिए चली गईं ! तिब्बत में इनसे भेंट हुई थी, किन्तु भूल से मैं पिछले पृष्ठों में इनकी चर्चा छोड़ गया !

५ अगस्त, शनिवार—आज प्रातःकाल 'धारचूला' से चलकर दोपहर में हमलोग 'कालिका' पहुँचे। यहीं पर हमलोगों ने भोजन किया। 'कालिका' गेहूँ के लिए प्रसिद्ध स्थान है। पहाड़ों में आटा पीसने के लिए, हमलोगों के देश की भाँति, 'फ्लोर-मिल' नहीं होती। इस काम के लिए इधर एक प्रकार की पनचक्कियाँ काम में लाई जाती हैं। ये पनचक्कियाँ पत्थर की बनी होती हैं। इन्हें कलदार इंजिन या हाथ से न चलाकर जल का आधार देकर चलाते हैं। चक्कियों में बहुत-से छेद बने रहते हैं, जिनके द्वारा गेहूँ के दाने गिर-गिरकर पिसते चले जाते हैं। इस प्रकार आटा तैयार हो जाता है। 'कालिका' में भी ऐसी पनचक्कियाँ हैं। इनके द्वारा अधिक-से-अधिक आटा तैयार किया जा सकता है।

भोजन के पश्चात् हमलोग फिर आगे बढ़े। 'बालवाकोट' से दो मील नीचे 'ठुङ्गा' या 'दुङ्गा' ग्राम में हमलोगों ने डेरा डाला। आज रात यहीं बीती। 'धारचूला' से 'कालिका' ५ मील है। 'कालिका' से 'ठुङ्गा' ७ मील है। इधर गर्मी और मच्छड़ों का बड़ा आतंक रहा, जिससे रात्रि में नींद नहीं आई।

६ अगस्त, रविवार—'ठुङ्गा' से हमलोग प्रातःकाल बिदा होकर मध्याह्न में गार्जियापुल के पास पहुँचे और यहीं हमलोगों ने पेट-पूजा की। इस स्थान पर श्रीदुर्गासिंहजी सड़क-जमादार का मकान है। आपने भी कैलास-यात्रा में मेरी काफी मदद की है, इसके लिए मैं आपका भी सदा कृतज्ञ रहूँगा।

पेट-पूजा से छुटकारा पाकर हमलोग तीन बजे 'अस्कोट' पहुँचे। 'ठुङ्गा' से अस्कोट १० मील की दूरी पर है। 'अस्कोट' आनेवालों को 'गार्जिया' से तोन मील की कठिन चढ़ाई मिलती है। यहाँ पहुँचने पर श्रीयुत पंडित हरिवल्लभजी, श्रीयुत पंडित तारादत्तजी तथा श्रीमान् कुँवर-साहब ने हमलोगों का बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया। यह दिन भी कभी नहीं भूलेगा। रात्रि बड़े आनंद से बीती।

यहाँ ( अस्कोट ) से 'पिथौरागढ़' तक हमलोगों के साथ जाने के लिए श्रीप्रतापनारायणसिंह, श्रीकेदारदत्त पाटनी और ठाकुर जगत्सिंह भी तैयार हो गये। इनके सहृदयतापूर्ण व्यवहार से मेरा हृदय गद्गद् हो गया। अहा! प्रेम की बड़ी महिमा है! प्रेमवश पराये लोग भी अपनों से बढ़कर बन जाते हैं।

७ अगस्त, सोमवार—आज हमलोग प्रातःकाल 'अस्कोट' से बिदा होकर दोपहर में 'दिघड़ा' पहुँचे। यहीं पर हमलोगों ने पेट-पूजा की। 'अस्कोट' से 'दिघड़ा' ७ मील की दूरी पर है। चढ़ाई के मार्ग से यहाँ पर आना पड़ता है।

पेट-पूजा के पश्चात् हमलोग ६ मील चलकर 'कनाली-छीना' पहुँचे। यहाँ आने के लिए भी तीन मील तक चढ़ाई का मार्ग मिलता है। 'कनाली-छीना' एक बड़ी बस्ती है। यहाँ पर कई दूकानें हैं, एक स्कूल भी है।

८ अगस्त, मंगलवार—आज प्रातःकाल 'कनाली-छीना' से बिदा होकर हमलोग, ५—६ घंटे के पश्चात्, २३ मील चलकर, ग्यारह बजे दिन में पिथौरागढ़ पहुँच गये। अस्कोट से हमारे साथ-साथ आये हुए प्रेमी बंधुओं को यहाँ कुछ जरूरी काम था, इसलिए वे लोग यहीं ठहर गये। अब आगे के लिए इनसे हमलोगों का बिछोह हो गया! इस बिछोह का दुःख हृदय ही जानता है, लिखना असम्भव है।

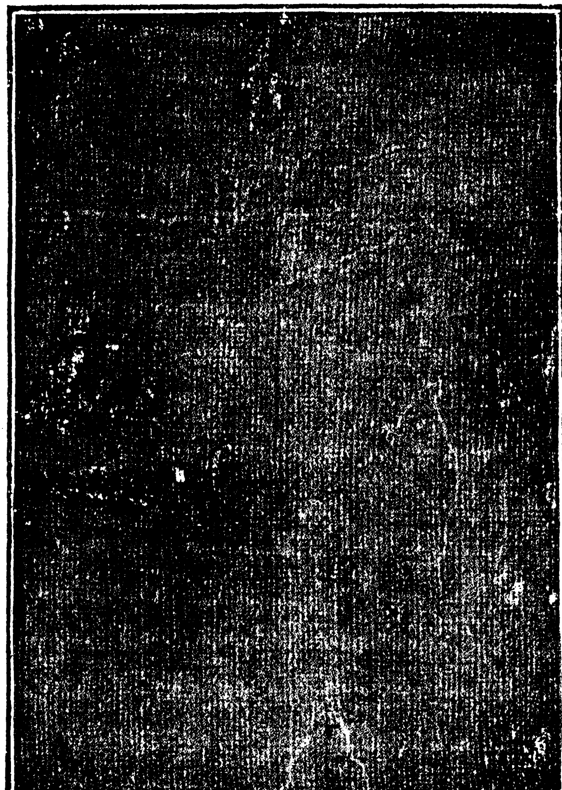
पाठक हैरान हुए होंगे कि ५-६ घंटे के अन्दर हमलोग २३ मील कैसे आ गये!

सुनिये, कनाली-छीना से दो मील तक उतराई का मार्ग मिलता है। इसके बाद सलामीनुमा उतराई का मार्ग है। थके-हारे पथिकों को पहाड़ी प्रान्तों में यदि उतराई का मार्ग (निरपनियाँ, पुंग, खेला आदि जैसे कठिन मार्ग नहीं!) मिले, तो रास्ता तय करने में बड़ी सुविधा होती है।

× × × ×

'पिथौरागढ़' अल्मोड़ा-जिले का सबडिवीजन है। यहाँ कचहरी भी है। डिप्टी, तहसीलदार, पेशकार, बारिस्टर आदि रहते हैं। एक खासा बाजार भी है। आवश्यक वस्तुएँ मिल

जाती हैं। एक अस्पताल भी है। तहसीली आफिस एक ऊँचे-से टीले पर स्थित है, किले की भाँति मालूम पड़ता है।



[ पहाड़ी वर्षा में बिजली की कड़क ]

ईसाइयों का एक बहुत बड़ा गिरजाघर भी यहाँ पर है। है तो

एक छोटा-सा स्थान; पर फिर भी यहाँ वेश्याओं की भरमार है !!! पढ़े-लिखे 'जेंटिलमैन' इन वेश्याओं से सम्पर्क रखने में अपनी शान समझते हैं !

इस पहाड़ी प्रान्त में वेश्याओं का इतना प्रचार कैसे हुआ ? इसका कारण यही मालूम होता है कि अँगरेजी पढ़े-लिखे शौकीन बाबुओं के इधर आने से यहाँ की भोली स्त्रियाँ उनकी विषय-वासना का शिकार बन गईं। इस प्रकार खुल्लमखुल्ला व्यभिचार होने लगा। यहाँ के मुखियों और विशेषतः श्रीमान् पंडित पूर्णानन्दजी शास्त्री को इस दुराचार के रोकने का यत्न करना चाहिये। अन्यथा पिथौरागढ़ का भविष्य अच्छा नहीं।

९ अगस्त से १५ अगस्त तक—यहाँ ( पिथौरागढ़ ) के परिचित बन्धुओं के प्रेमपूर्ण आग्रह से हम सात रोज तक यहीं ठहर गये। मार्ग में चलते-चलते अधिक थक गये थे, इस लिए विश्राम की भी आवश्यकता थी।

पर्वत के यात्रियों को इस बात का अधिक ध्यान रखना चाहिये कि अति शीतवाले स्थान से उष्ण जलवायुवाले स्थान में सहसा प्रवेश न करें; क्योंकि ऐसा करने से कई प्रकार के रोगों के उत्पन्न हो जाने का भय रहता है। जहाँ तक हो सके, उष्णता-प्रधान स्थान की ओर ठहर-ठहरकर आना चाहिये। इन्हीं कारणों से हमें भी सात रोज तक यहीं (पिथौरागढ़ में) ठहरना पड़ा। आगे बढ़ने के लिए कुछ आवश्यक तैयारी भी करनी थी।

पिथौरागढ़ से इधर (भारतभूमि की ओर) आनेवालों के लिए 'टनकपुर' रेलवे-स्टेशन होकर आना अच्छा होता है। इस मार्ग से आनेवालों को लोहाघाट, चम्पावत, 'मायावती'



[ एक घना पहाड़ी जंगल ]

(जहाँ स्वनामधन्य स्वामी विवेकानन्द का योगाश्रम है) आदि दर्शनीय स्थान देखने को मिलते हैं। इन दिनों जलवृष्टि

के कारण 'टनकपुर' जानेवाला मार्ग बन्द हो गया था। मालूम हुआ कि उधर जानेवालों को मार्ग में 'हाथीखोड़' होकर जाना पड़ता है, जो बड़ा भयंकर मार्ग है। हाथीखोड़ एक घना जंगल है। इसमें हाथी, बाघ,रीछ आदि भयंकर जंगली पशुओं का सामना करना पड़ता है। प्रायः यात्री 'टनकपुर' न जाकर अल्मोड़ा द्वारा भारत-भूमि में उतरते हैं।

पिथौरागढ़ से अल्मोड़ा जानेवालों को भी चढ़ाव-उतार के कठिन मार्ग मिलते हैं। वर्षा के दिनों में इधर का रास्ता और भी खराब हो जाता है। परन्तु मार्ग में किसी प्रकार का खतरा नहीं है। इधर के चढ़ाव-उतार के मार्गों के समीप अँगरेजी अक्षर 'यु' ( U ) का बड़ा-सा चित्र लटकता रहता है। इसका तात्पर्य्य यह है कि ऊपर से खाई में आने और फिर खाई से ऊपर जाने का मार्ग है !

जाड़ा शुरू होते ही टनकपुर में भोटिया व्यापारी आने लगते हैं। यहाँ दो-तीन मास रहकर वे भारत की ऊन की मिलों के एजेंटों के हाथ ऊन बेचते हैं। यहाँ विदेशों के एजेंट भी ऊन खरीदने के लिए आया करते हैं। इस प्रकार 'टनकपुर' ऊन के व्यापार का एक प्रसिद्ध केन्द्र-स्थान है। 'टनकपुर' आनेवालों को मार्ग में अनेक सुन्दर स्थान देखने को मिलते हैं।

× × ×

१६ अगस्त, बुधवार—भाई श्रीप्रतापनारायणसिंह तो बड़े प्रेमी निकले ! 'अस्कोट' से आये हुए अन्य प्रेमी बन्धु तो

'पिथौरागढ़' में ही रह गये; परन्तु आपने मेरा साथ छोड़ना पसंद नहीं किया। अतः अल्मोड़ा तक मुझे पहुँचाने के लिए आप मेरे साथ हो लिये।

पिथौरागढ़ से मध्याह्न में हमलोग चले। कुछ दूर आगे जाकर 'वाँस' डाक-बँगले में ठहरे। यहाँ पर एक स्कूल, एक धर्मशाला और एक दूकान है। पिथौरागढ़ से यह स्थान साढ़े सात मील है। समुद्र की सतह से यह स्थान ४७२५ फीट ऊँचा है।

१७ अगस्त, बृहस्पतिवार—आज प्रातःकाल हमलोगों ने प्रस्थान किया। १० मील चलने के उपरान्त 'गंगोलीहाट' नामक स्थान मिला। रात यहीं बीती। यह स्थान समुद्र की सतह से ५७५० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ के निवासियों का गृहस्थ-जीवन सुखमय है। यहाँ डाक-बँगला, स्कूल और डाकघर बने हुए हैं। किसी देवी का एक विख्यात मन्दिर भी है। बहुत-से यात्री इस मंदिर में दर्शनार्थ आते रहते हैं। इस स्थान से अल्मोड़ा कुल ३५ मील की दूरी पर है।

१८ अगस्त, शुक्रवार—आज प्रातःकाल 'गंगोलीहाट' से बिदा होने पर सात मील चलकर मध्याह्न में हमलोग 'हड़रापुल' पहुँचे। यह पुल सरयू नदी पर स्थित है। यहीं हमलोग भोजनादि से निश्चिन्त हुए। फिर साढ़े तीन मील चलने के बाद 'नैनी' पहुँचे। यहीं के डाक-बँगले में रात बीती। यह स्थान (नैनी) समुद्र की सतह से ५३१५ फीट की ऊँचाई पर स्थित है।

'हड़रापुल' से दो मील की सलामी चढ़ाई और डेढ़ मील की उतराई के पश्चात् 'नैनी' के दर्शन होते हैं।

१६ अगस्त, शनिवार—आज प्रातःकाल हमलोग भोजनादि से निवृत्त होकर 'नैनी' से बिदा हुए। चार मील की सलामीनुमा चढ़ाई और दो-तीन मील के मैदान का मार्ग तथा पश्चात् उतराई समाप्त कर हमलोग 'पनुआनौला' पहुँचे। 'नैनी' और 'पनुआनौला' के बीच में 'बूढ़ा जागेश्वर' नामक एक मंदिर भी मिला, जिसकी हालत खराब थी। 'नैनी' से 'पनुआनौला' १० मील दूर और समुद्र की सतह से ६६०० फीट ऊँचा है। आज यहीं के डाक-बँगले में हमलोगों की रात बीती।

२० अगस्त, रविवार—आज 'पनुआनौला' से हमलोग प्रातःकाल बिदा हुए। कुछ दूर सलामी उतार समाप्त कर 'वारीछीना' पहुँचे। 'वारीछीना' से भोजनोपरांत अल्मोड़ा पहुँच गये। दो मास तेरह दिन के पश्चात् अल्मोड़ा के फिर दर्शन पाकर मेरा हृदय प्रेम-विह्वल हो गया। आज हम स्वदेश में पहुँच गये; परन्तु हृदय में वह प्रसन्नता नहीं है। जो अल्मोड़ा से कैलास जाते समय थी!

शुभ्र हिमराशि से मंडित वे आकाशचुम्बी पर्वत-शिखर, मानस-सरोवर के दर्पण-सदृश वक्षस्थल पर श्वेत कमल के समान सुशोभित वे मौजी राजहंस, पहाड़ की बर्फानी चोटियों पर जगमगाता हुआ वह बाल-सूर्य की रंगीन किरणों का रत्न-जटित स्वर्ण-मुकुट—एक-एक कर सब याद आने लगे!

'अलमोड़ा' पहुँचकर, ओवरसियर साहब आदि साथियों के साथ, पूर्व-परिचित श्रीहरिरामजी टमटा के यहाँ, 'भैरव-भवन' में ठहरे। सब तरह से आराम रहा।

२१ अगस्त से २६ अगस्त ( सोमवार से शनिवार ) तक—इतने दिनों तक मैं अलमोड़ा ही में रहा। यहाँ के प्रेमी बन्धुओं ने कैलासजी से सकुशल लौट आने पर मुझे बधाई दी। मैंने भी उनकी अनुपम सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उनकी अकारण कृपा और निःस्वार्थ सहानुभूति को मैं आजीवन नहीं भूल सकता।

आरम्भ में जब मैं अलमोड़ा आया था तब मेरे तन पर केवल एक खद्दर का कुर्त्ता था। कुछ भाइयों ने मेरी वेश-भूषा देखकर मुझे आगे बढ़ने से रोका; किन्तु परमात्मा की कृपा से सानंद मेरा उद्देश्य सिद्ध हो गया। कठिन लक्ष्य की सिद्धि में कभी किसी को हताश न होना चाहिये। अचल आत्म-विश्वास और ईश्वरीय सहायता पर अवलम्बित रहकर सदैव अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहना चाहिये; एक-न-एक दिन पवित्र उद्देश्य अवश्य सफल होता है।

पहाड़ी शहरों में अलमोड़ा बहुत विख्यात है। यह समुद्र की सतह से ६००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए बहुत गुणकारी है। बड़े-बड़े रोगी यहाँ आकर स्वास्थ्य-लाभ करते हैं। यहाँ पर 'चीड़' के बहुत-से वृक्ष हैं, जिनकी जीवन-संचारिणी वायु से साधारण जन

तथा रोगी मनुष्य बहुत लाभ उठाते हैं। कहते हैं कि उन्हीं 'चीड़' के वृक्षों से तारपीन और मोटर-कार के तेल तैयार होते हैं। रोगियों को यहाँ 'रानीधारा' का जल अवश्य पीना चाहिये। यहाँ मकान-भाड़ा बहुत अधिक लगता है। चाहे आप चार महीने रहें या एक साल, पूरे वर्ष-भर का भाड़ा देना पड़ेगा! इस कठोर नियम के कारण गरीबों की बड़ी हानि है।

× × × ×

२७ अगस्त, रविवार—आज मैंने काठगुदाम जानेवाली एक मोटर-लॉरी में आठ रुपये पर अपने लिए एक स्थान ठीक किया। अलमोड़ा तक तो मेरे कैलास-यात्रा के साथी ओवरसियर साहब और उनके दल के लोग साथ थे; पर अब यहाँ से इन लोगों का भी साथ छूटा! अलमोड़ा के परिचित एवं सहृदय बन्धुओं से विछोह हुआ! सबसे मिल-जुलकर, मन-ही-मन मायामय संसार की विलक्षण लीला पर विचार करता हुआ, 'लॉरी' में अपनी जगह पर आ बैठा। २६ मील चलकर 'रानीखेत' में लॉरी ठहरी। आज रात यहीं बीती। रानीखेत में गोरी पल्टनों की छावनियाँ हैं; इधर हिन्दुस्तानियों की बस्ती नहीं है! यहाँ पर कई बड़ी-बड़ी दूकानें हैं, जहाँ अच्छे ताजे फल भी बहुतायत से बिकते हैं।

२८ अगस्त; सोमवार—मोटर-लॉरी के एजेंट महाशय रानीखेत ही में रहते हैं। इन्होंने आज लॉरी को आगे बढ़ने से रोक दिया। कारण यह था कि वर्षा बड़े जोर से हो रही

थी, आगे के मार्ग में पर्वतों के ढोके आ गिरे थे; लॉरी के आगे बढ़ने के लिए रास्ता नहीं रह गया था! किन्तु रानीखेत में अँगरेजी पलटन की छावनी होने के कारण इधर के मार्ग बन्द नहीं रह सकते; क्योंकि अँगरेजों को तो नित्य ही मोटर द्वारा सैर-सपाटे की धुन लगी रहती है। हजारों कुली हाथ में बिजली-बत्ती ले-लेकर दिन-रात मार्ग परिष्कृत करने में लगे हुए थे। तत्परता से काम जारी था।

२६ अगस्त, मंगलवार—आज बहुत कहने-सुनने पर मोटर लॉरी आगे बढ़ने पाई। थोड़ी ही दूर आगे मार्ग में रुकावट मिली! कुछ कुलियों को मजदूरी देकर मार्ग परिष्कृत कराया गया। तबतक बहुत दूर पैदल ही चलना पड़ा। कई स्थानों पर सड़क की बड़ी भयानक दशा देखने में आई। एक ओर हजारों फीट ऊँचे पहाड़, दूसरी ओर हजारों फीट गहरी खाई! इन्हीं दोनों के बीच से होकर मोटर-लॉरी की सड़क है—सो भी जगह-जगह टूटी हुई! किसी तरह लॉरी द्वारा ३८ मील चलकर मैं 'बीरभट्टी' पहुँचा। रात यहीं बीती। यह वही स्थान है, जहाँ से होकर मैं—कैलास जाते समय—'नैनीताल' गया था।

रानीखेत से बीरभट्टी आते समय मार्ग में 'भवाली' नाम का एक स्थान मिलता है। यहाँ की जलवायु बहुत गुणकारी है। क्षय और तपेदिक के रोगी प्रायः यहाँ के बड़े अस्पताल ( Sanitorium-स्वास्थ्य-निकेतन ) में चिकित्सा कराने के लिए

आते हैं। किन्तु यहाँ पर खर्च बहुत अधिक पड़ता है। यहाँ भी थोड़ी-बहुत गोरी पल्टन रहती है।

× × ×

३० अगस्त, बुधवार—आज प्रातःकाल मोटर-लॉरी पर मैं 'काठगुदाम' की ओर चल पड़ा। १३ मील की यात्रा के पश्चात् दिन में साढ़े आठ बजे मैं 'काठगुदाम' पहुँचा! यहाँ से बरेली जानेवाली गाड़ी द्वारा मुझे अपने घर पहुँचना था। किन्तु गाड़ी जाने में देर जानकर मैं तीन मील पैदल चलकर 'हलद्वानी' पहुँचा। पहाड़ी प्रान्तों में प्रवेश करने से पूर्व यही 'हलद्वानी-मंडी' मिलती है। यह एक मशहूर जगह है। कपड़े की दूकानें यहाँ अधिक हैं। यहाँ से मैं काठगुदाम की ओर फिर न लौट सका। यहीं से ढाई बजे दिन में एक गाड़ी बरेली को जाती है। लखनऊ के मुसाफिर भी बरेलीवाली गाड़ी से ही जाते हैं। मैंने एक बार पर्वतीय प्रान्तों को नमस्कार किया और हलद्वानी से लखनऊ तक का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया।

३१ अगस्त, वृहस्पतिवार—आज प्रातःकाल मैं बरेली से लखनऊ जानेवाली गाड़ी पर सवार होकर लखनऊ-जंक्शन पहुँचा। संध्या समय लखनऊ-जंकशन से साढ़े आठ बजे की गाड़ी पर सवार होकर मुजफ्फरपुर की ओर चल पड़ा।

१ सितम्बर, शुक्रवार—आज सायंकाल मैं मुजफ्फरपुर सकुशल पहुँच गया। दूसरी सितम्बर तक मुजफ्फरपुर में ही रहा। पहाड़ी यात्रा के दिन बार-बार याद आते रहे!

३ सितम्बर, रविवार—आज मैं मुजफ्फरपुर से बिदा होकर अपने जन्म-ग्राम 'धरहरवा' में सकुशल पहुँच गया। घरवालों ने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया। कैलास-यात्रा सकुशल समाप्त कर घर आ जाने पर मैंने परमात्मा की परम दया के लिए उन्हें कोटिशः धन्यवाद दिया।

× × ×

प्रिय पाठक, अब मैं आपसे भी बिदा होता हूँ। बिदा होने से पहले दो-दो बातें कर लेना ठीक होगा।

यदि मेरी कैलास-यात्रा की राम-कहानी सुनकर आपके हृदय में कुछ भी कैलास-दर्शन की उत्कंठा उत्पन्न हुई हो, तो मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि आप यदि मानव-जीवन का सच्चा आनन्द लेना चाहते हैं, तो एक बार कैलास और मानस-सरोवर की यात्रा अवश्य कीजिये। यदि उत्साही और साहसी यात्री-दल का संगठन करके यात्रा की जाय, तो अलौकिक आनन्द का अनुभव हो सकता है। यदि यात्रा-दल के साथ अन्य साधन-सामग्रियों के अतिरिक्त फोटो का 'केमरा' भी हो, तो और अच्छा होगा। हिन्दी में सर्वाङ्गसुन्दर सचित्र कैलास-यात्रा-वर्णन का अभाव खटकता है, उसे पूरा कीजिये।

---

# परिशिष्ट

## [ १ ]

## भारतीय साहित्य में 'कैलास'-'मानस'-वर्णन

भारतीय साहित्य में कैलास-पर्वत और मानस-सरोवर का विपुल वर्णन मिलता है। संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रंथों में कैलास-मानस-वर्णन भरा पड़ा है। रामायण और महाभारत तथा पुराणों और महाकाव्यों में ऐसे वर्णनों की कमी नहीं है।

कैलास-पर्वत भगवान् शंकर का निवास-स्थान है। अत्यन्त प्राचीन 'अध्यात्म-रामायण' के बाल-कांड ( प्रथम सर्ग ) में यह श्लोक पाया जाता है—

कैलासाग्रे कदाचिद्रविशतविमले मन्दिरे रत्नपीठे।
संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं सेवितं सिद्धसंघैः।
देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया पार्वती भक्तिनम्रा॥

... ... ... ... ...

इस श्लोक के भावार्थ से स्पष्ट प्रकट है कि उज्ज्वल कैलास-शिखर पर भगवान् त्रिलोचन शिव ध्यानमग्न रहते हैं, सिद्धजन उनकी सेवा करते हैं और उनके वाम-भाग में भक्तिनम्रा पार्वती विराजमान रहती हैं।

तुलसीकृत रामायण में लिखा है—

परम रम्य गिरिवर कैलासू।
सदा जहाँ सिव-उमा-निवासू॥

सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर-किन्नर-मुनिबृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सब सुखकंद॥

पुनः 'अध्यात्म-रामायण' में ही, उत्तर-कांड के दूसरे सर्ग में, एक श्लोक इस प्रकार है—

धनदः पितृवाक्येन त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः।
गत्वा कैलास-शिखरं तपसा तोषयच्छिवम्॥

अर्थात् पिता की आज्ञा से कुवेर लंकापुरी को छोड़कर कैलास-शिखर पर गये और वहाँ तपस्या द्वारा शिवजी को प्रसन्न किया।

फिर उसी सर्ग में ये दोनों श्लोक भी हैं—

रावणो विजयी लोकान् सर्वान् जित्वा क्रमेण तु।
कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः॥
तत्र नन्दीश्वरेणैवं शप्तोऽयं राक्षसेश्वरः।
वानरैर्मानुषैश्चैव नाशं गच्छेति कोपिना॥

अर्थात् विजयी रावण क्रमशः सब लोकों को जीतकर शिवजी के पास पहुँचा और वहाँ उसने कैलास को अपनी भुजाओं पर मुद्गर की तरह उठा लिया; तब नन्दीश्वर ने उसे शाप दिया कि वह वानरों और मनुष्यों से मारा जायगा।

महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का यह श्लोक देखिये—

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः।
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं।
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः॥

—( पूर्वार्द्ध, श्लोक ५८ )

इस श्लोक का भावार्थ आचार्य द्विवेदीजी ने बड़ा सरल लिखा है—"कैलास-पर्वत शुभ्र स्फटिक का है। इस कारण सुरसुन्दरियाँ उससे दर्पण का काम लेती हैं। उसमें उनके प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं। यह वही कैलास है जिसे लंकेश रावण ने अपनी बीसों भुजाओं का बल लगाकर जड़ से हिला दिया था। कुमुद के सदृश उसके सफेद शिखर आसमान के भीतर दूर तक चले गये हैं। उन्हें देखकर ऐसा मालूम होता है जैसे त्रिपुरान्तक त्रिलोचन का अट्टहास इकट्ठा होकर सभी दिशाओं में चमक रहा है। ( वह पर्वत तत्काल काटे गये हाथी दाँत के समान उजला है—"सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य, शोभामद्रेः·············।" )"

— ( हिन्दी-मेघदूत )

महाकवि कालिदास के 'कुमार-संभव' में एक श्लोक है। उसमें कैलास और कैलासपति भगवान् शंकर का सादृश्य दिखाया गया है—

पिनाकिनापि स्फटिकाचलेन्द्रः
कैलासनामा कलिताम्बराशः।

धृताद्ध सोमोद्भुतभागिभागो
विभूतिधारी स्व इव प्रपेदे ॥
—( सर्ग ६, श्लोक ३६ )

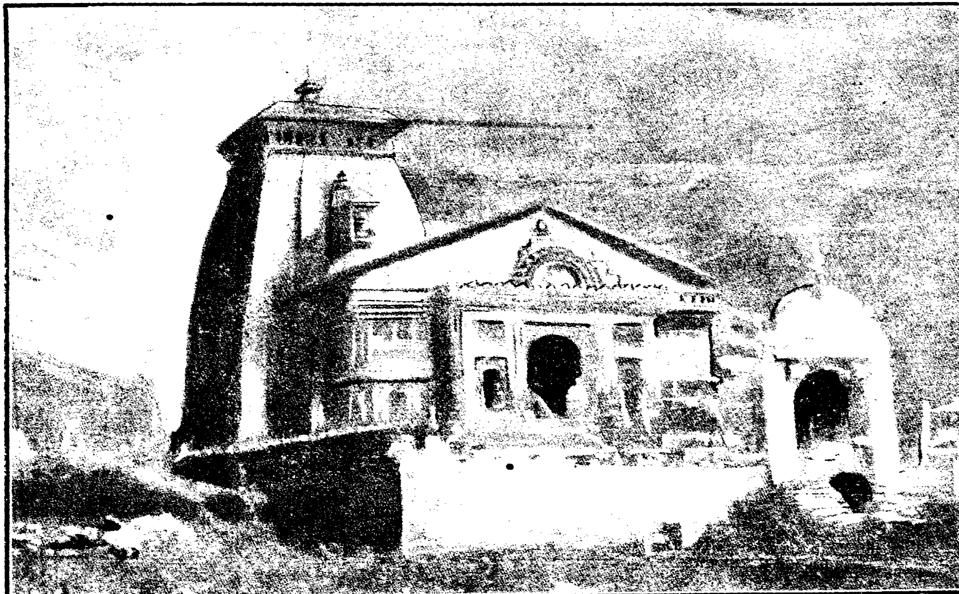
अर्थात्—"कैलास-पर्वत साक्षात् शिव के समान है। सर्वाङ्ग में उज्ज्वल विभूति रमाने से शिवजी का शरीर शुभ्र है, हिम-राशि से आच्छादित होने के कारण कैलास भी स्फटिक के समान श्वेत दीख पड़ता है। शिवजी दिगम्बर हैं—दिशाओं के वस्त्र धारण करते हैं, कैलास भी आकाश चूमता हुआ दिशाओं के वस्त्र धारण किये हुए है। शिवजी के सिर पर सोम ( चन्द्रमा ) है, कैलास के शिखर पर भी सोम-लता शोभती है। इस प्रकार विभूति-भूषण शंकर के समान ही कैलास भी शोभायमान है।"

इस प्रकार अनेक ग्रन्थों में, अनेक स्थलों में, कैलास का वर्णन मिलता है। सबका उल्लेख करने के लिए यहाँ स्थान का अभाव है। यदि कैलास और मानस-सरोवर पर कोई स्वतंत्र पुस्तक लिखी जाय, तो सब स्थलों के वर्णन छाँटने से एक बड़ा भारी पोथा तैयार हो सकता है।

हिन्दी-प्रेमी पाठकों को गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित-मानस' में भी कैलास का जो वर्णन सुलभ है, उससे सिद्ध होता है कि वह शिवजी का निवासस्थान है। यथा—

बरनत पंथ बिबिध इतिहासा।
बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥

× × × ×



यह कैलास-मन्दिर, दिदिफू ( Didiphu ) में, ११००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है।



बर्फिस्तान के अन्दर 'कैलास' नामक गाँव, समुद्र-तल से
२२८३० फीट ऊँचा, तिब्बत में है।

सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोच मन माहिं ।

× × × ×

जबहिं सम्भु कैलासहिं आये ।
सुर सब निज-निज लोक सिधाये ॥
करहिं बिबिध बिधि भोग-बिलासा ।
गनन समेत बसहिं कैलासा ॥

—( बालकांड )

महाभारत में भी, कई स्थलों में, कैलास का वर्णन पाया जाता है । पांडवों की तीर्थयात्रा में जो कैलास-सम्बन्धी वर्णन मिलते हैं, उनसे भी यही सिद्ध होता है कि वह देवताओं का निवास-स्थान है और अत्यन्त उज्ज्वल भी है तथा वहाँ पहुँचने का रास्ता बड़ा बीहड़ है ।

लोमस ऋषि महाराज युधिष्ठिर से कहते हैं—"राजन् ! यह छः योजन ऊँचा कैलास-पर्वत देखिये । इस स्थान पर बहुत-से देवता लोग—असंख्य यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, गरुड़ और गन्धर्वों के साथ— कुबेर के भवन में आया करते हैं ।"

—( 'हिन्दी-महाभारत,' वनपर्व, अध्याय १३९ )

वैशम्पायन कहते हैं—"आगे चलकर कुबेर के प्रिय कैलास-पर्वत को देखकर पांडव फिर प्रसन्न हुए । वह पर्वत देखने में सफेद मेघ के समान जान पड़ रहा था ।······बहुत-से दुर्गम प्रदेशों में ठहरते हुए पांडव क्रमशः कैलास-पर्वत को लाँघकर महर्षि वृषपर्वा के अत्यन्त रमणीय आश्रम में पहुँचे ।"

—( 'हिन्दी-महाभारत,' वनपर्व, अध्याय १७७ )

इन वर्णनों से यह विदित होता है कि कैलास के साथ कुबेर का भी सम्बन्ध है। अध्यात्मरामायण के पूर्वोक्त श्लोक में इसका स्पष्ट संकेत है। कुबेर शिवजी के भक्त और आराधक थे। मेघदूत में लिखा है—

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां।
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥

—( पूर्वार्द्ध, श्लोक ७ )

"अलकापुरी ऐसी-वैसी नगरी नहीं, बड़ी सुन्दर है। बड़े-बड़े यक्षराज वहाँ रहते हैं। उसके बाहरी बागीचों में प्रत्यक्ष शिवजी ठहरा करते हैं। उनकी स्थिति के समय उनके मस्तक-वर्ती चन्द्रमा की चाँदनी से अलका के महल खूब ही चम-चमाते हैं।" —( हिन्दी-मेघदूत )

महाभारत में भी इसका प्रमाण मिलता है—

"भीमसेन कुबेर-सरोवर के पास पहुँचे। कैलास-शिखर पर, कुबेर के भवन के पास, पहाड़ी झरनों से यह सरोवर बना है। उसकी रक्षा राक्षस किया करते हैं। उसके किनारे के स्थान बड़े ही मनोहर हैं। उसमें कीचड़ का नाम नहीं है। वह सरो-वर पर्वत-शिखर पर है। उसमें निर्मल जल भरा हुआ है। वह अद्भुत और सुहावना है। उसका जल शीतल, हल्का और अमृत के समान स्वादिष्ट है। सोने के पत्तेवाले बहुत-से विचित्र मनोहर सुगन्धित कमल उसमें खिल रहे हैं। हंस आदि पक्षियों के विचरने से कमलों का विमल सुगंधित पराग बराबर उड़ा

करता है। महात्मा कुबेर उसमें जल-विहार किया करते हैं। देवता, गन्धर्व, अप्सरा, ऋषि, यक्ष, किन्नर, किम्पुरुष, राक्षस आदि वहाँ रहते हैं। महाराज कुबेर की आज्ञा से हजारों राक्षस, विचित्र शस्त्र लिये, विचित्र पहनावा पहने, उस स्थान की रक्षा किया करते हैं।"

—( 'हिन्दी-महाभारत', वनपर्व, अध्याय १५३ )

तुलसी-कृत रामायण में स्वयं शिवजी की वाणी—

"परमातुर बिहंगपति तब आयउ मम पास।
जात रहेउँ कुबेर-गृह रहिहु उमा कैलास॥"

—( उत्तरकांड, दोहा ८३ )

इस प्रकार कुबेर के साथ शिवजी का सम्बन्ध स्पष्ट है। हो सकता है कि महाभारत में जिस कुबेर-सरोवर का वर्णन है वह मानस-सरोवर का ही वर्णन हो। महाकवि कालिदास ने मानस-सरोवर में भी सुनहले कमल का वर्णन किया है, जैसा ऊपर कुबेर-सरोवर के वर्णन में आया है। मेघदूत ( पूर्वार्द्ध ) का बासठवाँ श्लोक देखिये—

"हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः।"

"मानस-सरोवर का सलिल सोने के सुन्दर सरोरुह उत्पन्न करता है।" —( हिन्दी-मेघदूत )

मानस-सरोवर का मार्ग जैसा बीहड़ है वैसा ही कुबेर-सरोवर के मार्ग का भी वर्णन मिलता है। युधिष्ठिर ने भीम से कहा है—

"जिस स्थान पर नर-नारायण का आश्रम विशाल बदरी-वन है उस यक्षों की बस्ती रमणीय पर्वत को देखो। यहाँ से हम कठोर तप करके पैदल ही राक्षस-गण-सेवित रमणीय कुबेर-सरोवर को जायँगे। हे वीर! सवारी पर चढ़कर जानेवाले नीच, क्रूर, लोभी या अशान्तचित्त पुरुष इस स्थान में नहीं जा सकते। इसलिए हम केवल शस्त्र और खड्ग लेकर, व्रतधारी ब्राह्मणों के साथ, अर्जुन को खोजने वहाँ जायँगे। उस स्थान पर अजितेन्द्रिय पापी ही मक्खी, डाँस, मच्छड़, सिंह, बाघ, साँप आदि से डरते हैं। जितेन्द्रिय पवित्र व्यक्तियों के लिए कोई खटका नहीं है। इसलिए संयमपूर्वक मिताहारी होकर अर्जुन को देखने हम इस गन्धमादन-पर्वत पर जायँगे।"

--(हिन्दी-महाभारत, वनपर्व, अध्याय १४१)

मानस-सरोवर के आसपास जो 'गरुड-मान्धाता' नामक पर्वत-श्रेणी है वह प्राचीन काल का 'गन्धमादन' हो सकता है। हिमालय के अन्दर 'मानस-सरोवर' के सिवा दूसरी किसी बड़ी झील का पता आजतक नहीं लगा। पुराने या नये भूगोलों में भी किसी दूसरी ऐसी झील का पता नहीं है। संसार की सर्वोत्तम झील यही है। स्कन्दपुराण के मानस-खंड में इस-(मानस-सरोवर) की बड़ी महिमा लिखी है। जन्मेजय ने व्यास-शिष्य 'सूत' से पूछा कि संसार की सृष्टि कैसे हुई। सूत ने कहा कि भगवान् विष्णु के सातवें मनुजावतार दत्तात्रेय ऋषि हिमालय से होकर काशी गये और राजा धन्वन्तरि से हिमा-

लय के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहने लगे—"मैंने मानस-सरोवर को देखा, जहाँ राजहंस के रूप में शिवजी निवास करते हैं। वहीं से गंगा, सरयू और शतद्रु ( सतलज ) आदि नदियाँ निकली हैं। मानस-सरोवर में स्नान करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मलोक को जाता है। जो इसका जल पीता है वह सैकड़ों जन्म के पापों से मुक्त होकर शिव-लोक ( कैलास ? ) को जाता है। इस सरोवर का जल मोती के समान स्वच्छ है। हिमालय की बराबरी कोई पहाड़ नहीं कर सकता ; क्योंकि उसमें कैलास और मानस-सरोवर हैं।" इत्यादि

मानस-सरोवर में जो हंस-वेशधारी शिव के निवास का वर्णन है उसका कुछ आभास तुलसी-कृत रामायण के इस वर्णन में मिलता है—

सैलोपरि सर सुन्दर सोहा।
मनि-सोपान देखि मन मोहा॥
सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कलरव हंसगन गुंजत मंजुल भृंग॥
तब कछु काल मराल-तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति-चरित पुनि आयहुँ कैलास॥

—( उत्तरकांड, दोहा ७६-८० )

हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि मानस-सरोवर की पवित्रता और महिमा से प्रभावान्वित होकर ही महाकवि तुलसीदास ने अपने महाकाव्य का नाम 'रामचरितमानस' रक्खा। उन्होंने

'मानस' की रचना का आरम्भ करते हुए--'सुमिरि उमा वृष-केतु'--शिव-पार्वती का ही स्मरण किया है।

बालकांड में देखिये--

रामचरितमानस मनभावन।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
× × × ×
संभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी।
रामचरितमानस कबि तुलसी॥

'मानस-सरोवर' से सरयू निकलती है, तो 'रामचरित-मानस' से भी 'राम-विमल-जस-जल-भरिता--सुभग कबिता-सरिता' सरयू प्रवाहित हुई है। देखिये—

सरयू नाम सुमंगल-मूला।
लोक-वेद-मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत 'सुमानस-नन्दिनि'।
कलिमल-तटतरुमूल-निकन्दिनि॥

ऊपर महाभारत के वर्णन में कुबेर-सरोवर के मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन किया गया है। 'मानस' के विषय में तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

अति खल जे विषयी बक कागा।
इहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
आवत इहि सर अति कठिनाई।
राम-कृपा बिनु आइ न जाई॥

जे स्रद्धा-सम्बल-रहित नहिं सन्तन कर साथ।
तिन कहुँ 'मानस' अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥
—( बालकांड, दोहा ४६ )

'कैलास' के विषय में भी तुलसीदासजी ने लिखा है—

हरिहर-बिमुख धर्मरत नाहीं।
ते नर तहाँ न सपनेहुँ जाहीं॥—( बालकांड )

ऊपर की ये तुलनाएँ ठीक मिलती हैं। वास्तव में कैलास और मानस-सरोवर अत्यन्त कठिनता से प्राप्त होते हैं। दोनों ही बड़े दुर्गम और दुर्द्धर्ष हैं। वाल्मीकीय रामायण में परशुराम के रूप का वर्णन करते हुए बालकांड में लिखा है—

"कैलासमिव दुर्द्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्".
( सर्ग ७४, श्लोक १८ )

स्वामी शिवानन्दजी ब्रह्मचारी ने गोरखपुर के प्रसिद्ध हिन्दी-मासिक 'कल्याण' के 'शिवाङ्क * में लिखा है—

"तिब्बत में कैलास नाम की एक विशाल पर्वतश्रेणी है जिसके मध्य में एक सुन्दर, प्रकृति के कुशल करों से गढ़ा हुआ एवं सुसज्जित, देदीप्यमान शिखर है जो बारहो मास रजत-सदृश हिम-राशि से आवृत रहता है। यह शिखर समुद्रतल से २२६८०, और कुछ लोगों के मत में २२०२८, फीट ऊँचा है। यह शिखर एक प्राकृतिक एवं विशाल शिवलिङ्ग ( विराट् रूप ) के आकार का है। इसकी दूर से ही शिव के रूप में पूजा होती है। वहाँ

* श्रावण १६६०, अगस्त १६३३, वर्ष ८, संख्या १, मूल्य ३)

न तो कोई मन्दिर है, न पुजारी और न दैनिक पूजा ही होती है। २२ जुलाई सन् १६३१ ई० को भगवान् शंकर की कृपा से मुझे श्रीकैलास के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं बड़ी कठिनता से एवं परिश्रम से कैलास की उपत्यका तक चढ़कर गया जहाँ सिन्धु-नदी का उद्गम है। वह स्थान बड़ा ही रमणीय एवं मन को लुभानेवाला है। कैलास की प्रदक्षिणा में पहला मुकाम दिदिफू गुहा ( Didiphu ) है। वहाँ से चढ़ाई प्रारम्भ होती है। कैलासशृङ्ग के पृष्ठभाग के पीछे से, हिम की चट्टानों के बीच में से, होकर सिन्धु-नदी एक छोटे-से नाले के रूप में निकलती है। यद्यपि भगवान् शिव के चित्रों में उनके मस्तक पर से गंगा की धारा बहती हुई दिखाई जाती है, किन्तु वास्तव में स्थूल जगत् में तो उनके मस्तक ( कैलास ) से ही सिन्धु-नदी निकलती है। कैलास की प्रदक्षिणा ३० मील की है और तीन दिन में पूरी होती है। मार्ग में प्रसिद्ध एवं पवित्र गौरीकुंड मिलता है जो बारहों मास हिमाच्छन्न रहता है। स्नान करते समय बर्फ को तोड़कर हटाना पड़ता है।"

—( पृष्ठ ११७ )

'कल्याण' के 'शिवाङ्क' में १४८ पृष्ठ पर एक विद्वान् सज्जन ने लिखा है—"शिवजी भंग, धतूरा, बेल बहुत खाते हैं; शरीर में साँप लपेटे रहते हैं; सवारी बैल की करते हैं और साथ में भूतगण रखते हैं। ऐसा क्यों ? सुनो। भंग, धतूरा और सर्पों के विना शीतप्रधान कैलास पर दिगम्बर-रूप में कैसे रहा जा

सके, जब कि कैलास के दर्शनार्थी वहाँ से दो-चार कोस की दूरी पर ही रह जाते हैं और फिर भी उनमें से लगभग पाँच प्रतिशत काल के ग्रास बनते सुने जाते हैं। बेल का गुण भी उसे दो-चार वर्ष तक सेवन किये विना कैसे मालूम हो सकता है। मैं जानता हूँ, जो तेइस वर्ष सेवन कर चुका हूँ। बैल में घोड़े और भैंसे से भी अधिक बल होता है, बैल बड़ा सतोगुणी होता है। इसी प्रकार जो काम अङ्गिरा, भृगु, वसिष्ठ आदि से नहीं हो सकता वह भूत करते हैं। पंडितजन भी दो-एक भूत वश में रखते हैं जो उनके अनेक ऐसे काम करते हैं जो भैरव और दुर्गा से होने कठिन हैं।"

इसी प्रकार समुद्र-मन्थन से जब हालाहल नामक महाविष निकला था तब भयभीत देवतागण शिवजी की शरण में कैलास-पर्वत पर ही गये थे—श्रीमद्भागवत में इसकी कथा है कि 'देवपुर' नामक नगर के राजा परम शिवभक्त 'वीरमणि' ने जब भगवान् रामचन्द्र के अश्वमेध के घोड़े को पकड़ लिया तब शत्रुघ्न ने युद्ध में उसे परास्त किया, और उसकी सहायता के लिये उधर शिवजी आये—इधर शत्रुघ्न की सहायता के लिये रामचन्द्रजी; पर जब दोनों अभिन्न मित्रों में देखादेखी हुई तब लड़ाई की जरूरत न रही, दोनों परस्पर मिलकर परम प्रसन्न हुए; रामचन्द्रजी अयोध्या गये और शिवजी कैलास।

'शिवसहस्रनामस्तोत्र' में देखिये—

"कैलासाद्रिपतिं शशाङ्ककलयास्फूर्जज्जटामण्डलम्।"

"निरन्तराय सूक्ष्माय कैलासपतये नमः।"

'अमरकोष' में भी है—"भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशोः गिरिशो मृडः।" इसपर संस्कृत टीकाकार ने लिखा है—"गिरेः कैलासस्य ईशः गिरीशः; गिरिर्यस्यास्ति अथवा गिरौ शेते।"

शैव-शिरोमणि पुष्पदन्ताचार्य के सर्वश्रेष्ठ 'शिवमहिम्नस्तोत्र' का बारहवाँ श्लोक इस प्रकार है—

अमुष्यस्त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजबलम्
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यतिखलः॥

अर्थात्—हे भगवान् शंकर! रावण ने आप ही की सेवा करके पराक्रम को प्राप्त किया था। उसने अपने भुज-बल की परीक्षा करने के लिए जब कैलास को उठाया तब आपने पैर के अँगूठे से कैलास को दबा दिया, जिससे उसकी भुजाएँ कैलास के नीचे दब गईं। यह लीला देख पाताल के लोग हँसने लगे और रावण की शोभा बिगड़ गई। वास्तव में दुर्जन लोग ऐश्वर्यवान् होने से मोह को प्राप्त हो ही जाते हैं।

इस प्रकार अनेक स्थलों में कैलास की महिमा का वर्णन पाया जाता है। शिवपुराण आदि के उद्धरण और प्रमाण यदि उपस्थित किये जायँ, तो अनावश्यक ग्रंथ-विस्तार होगा। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसी से अनुमान हो सकता है कि कैलास और मानस-सरोवर के वर्णनों से भारतीय साहित्य के

बहुतेरे ग्रन्थ भरे पड़े हैं, तथा सभी वर्णनों से यही सिद्ध होता है कि ये दोनों ही स्थल देवताओं और शिवजी के वास-स्थान हैं।

पूर्वोक्त 'शिवाङ्क' ही में एक स्थान पर और है—

"यह प्रसिद्ध है और शास्त्रों से भी सिद्ध है कि श्रीशिवजी नगाधिराज हिमालय के एक भाग—'कैलास' नामक पर्वत पर सपरिवार वास करते हैं। उनके पास प्रतापी भारतवासी जाते हैं। परशुराम, अर्जुन आदि उनसे विद्याएँ भी प्राप्त कर लाये; पाणिनि तथा सनकादि ने उनके डमरू से सम्पूर्ण व्याकरण या मोक्ष-विद्या प्राप्त की। भारतवासियों का यह परम सौभाग्य है कि उनके गुरु साक्षात् महादेव हैं और वे उन्हीं के लोक में सपरिवार वास कर रहे हैं। इस प्रकार देवों में हमारा सबसे अधिक सम्बन्ध महादेवजी के साथ सिद्ध होता है। श्रीविष्णु आदि के वैकुंठ आदि लोक हमारी पृथ्वी से पृथक् हैं। श्रीविष्णु भगवान् हमारे कल्याणार्थ सपरिवार और सगण हमारे पास ही डेरा डाले नहीं रहते, न वे किसी को गुरु-रूप से विद्याभ्यास ही कराते हैं। श्रीशिवजी से प्राप्त हुई भारतीय अपूर्व विद्याएँ ( ज्ञानगंगा )—( १ ) व्याकरण, ( २ ) गान्धर्व-वेद ( गानविद्या ), ( ३ ) सामुद्रिक ( हस्तरेखा-विज्ञान ), ( ४ ) वैद्यक, ( ५ ) अस्त्र-शस्त्र-विद्या, ( ६ ) योगशास्त्र, ( ७ ) भक्ति-शास्त्र, ( ८ ) 'रुद्रयामल' आदि तन्त्र, ( ९ ) सावर आदि मंत्रशास्त्र, ( १० ) स्वरोदय, और ( ११ ) कथाएँ तो प्रायः

सब—'कैलासशिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शङ्करम्, गुह्याद्‌गुह्यतरं किञ्चित् कथयस्व महेश्वर।'—यहीं से प्रारम्भ होती हैं।"

श्रीशिवजी के अष्टोत्तरशत (१०८) दिव्य स्थानों में 'कैलास' का भी उल्लेख है।

किन्तु भारतीय साहित्य में 'मानस-सरोवर' और 'कैलास' के आध्यात्मिक रूप का भी वर्णन मिलता है। जिस कैलास का वर्णन ऊपर किया गया है वह तो भू-कैलास है। इसके अतिरिक्त एक 'महाकैलास' भी है। विद्वानों के कथनानुसार 'काशी-केदार-माहात्म्य' के चतुर्थ अध्याय में महाकैलास का अद्भुत वर्णन है—"वहाँ लाख योजन विस्तीर्ण स्वर्णभूमि है, और उसके चारों ओर पचास हजार योजन विस्तृत तथा बीस हजार ऊँची चाँदी की भूमि का घेरा है।" अतएव उस महाकैलास से मेरी इस पुस्तक का कोई विशेष प्रयोजन नहीं।

हिन्दी के एक श्रेष्ठ विद्वान् लेखक श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, ने 'शिव के स्वरूप' का विद्वत्तापूर्ण विवेचन करते हुए उपर्युक्त 'शिवांक' में ही एक गवेषणापूर्ण लेख लिखा है, जिसमें 'कैलास' और 'मानस' के आध्यात्मिक रूप का बड़ा ही विशद वर्णन किया गया है। उसका थोड़ा-सा अंश अपने पाठकों के मनोरंजन के लिए यहाँ दिये देता हूँ—

"ब्रह्मांडव्यापी तीन गुण हमारे शरीर में भी काम कर रहे हैं। योगशास्त्र में वर्णन किया गया है कि इन तीन गुणों की

अधीश्वरी शक्ति एक त्रिकोण के मध्य में प्रतिष्ठित रहती है। इस त्रिकोणात्मक शक्ति का संयम करके उसे आत्मवश्य करना ही महती विजय है। यह कुंडलिनी शक्ति जबतक स्वच्छन्द होकर रहती है तबतक इसका प्रवाह अधोमुखी रहता है और असंयम के कारण इससे मनुष्य की हानि भी हो सकती है। इसके प्रवाह को ऊर्ध्वगामी बनाकर पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्राप्ति ही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वस्थता की सिद्धि है। सुषुम्णा में ही कुंडलिनी शक्ति का संचार रहता है। सुषुम्णा या मेरुदंड के दो सिरे हैं। ऊपर के सिरे पर 'कैलास' या मस्तिष्क है, नीचे के सिरे पर शक्ति का त्रिकोण या पीठ है। मानसिक समाधि के लिए आवश्यक है कि सबसे नीचे की कोटि पर स्थित शक्ति का प्रवाह ब्रह्मांड-स्थित शिव के साथ मिल जाय। यही शिव और शक्ति का विवाह है जिसका काव्यमय वर्णन अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है।"

"यह शरीर देवपुरी है, इसका नाम अयोध्या है; क्योंकि यहाँ देवासुर-युद्ध में देवों की विजय से असुर-युद्ध शान्त हो चुका है। इसमें आठ चक्र और नौ इन्द्रियद्वार हैं। ज्योति अर्थात् तेज से आवृत जो हिरण्यमय कोष ( मस्तिष्क ) है वही इसमें स्वर्ग है। हिरण्यमय कोष या सोने की पुरी ब्राह्मण-ग्रंथों में द्युलोक में कही गई है। यह द्युलोक मस्तिष्क है। सब देवों का वास यहीं है, यहीं से सब ज्ञानतन्तुओं का विकास होता है। इसीसे यहाँ ज्योतिषावृत या प्रकाशमय लोक की

कल्पना की गई है। इस ब्रह्मांड के ही एक प्रदेश का नाम 'कैलास' है। कालिदास ने 'कैलास' के सम्बन्ध मे 'मेघदूत' में कहा है—'यो वितत्य स्थितः खम्' ( १-५८ )—अर्थात् कैलास 'खं' या ब्रह्मांड-प्रदेश को वितान की तरह व्याप्त करके स्थित है। खं—ब्रह्म का स्थान पाँचों चक्रों से ऊपर ब्रह्मांड या मस्तिष्क है।"

"मस्तिष्क में चार वापी या सरोवर हैं जिन्हें अँगरेजी में 'वेंट्रिकिल' कहते हैं। ये पुराणों के 'मानस' आदि सरोवर हैं, जहाँ देवता बसते हैं। इन्हीं के आस-पास के उन्नत प्रदेशों को 'पर्वत' कहा है। कैलास और मन्दराचल, सुमेरु और गन्ध-मादन, इन्हीं की संज्ञाएँ हैं। ये देवों के क्रीड़ा-पर्वत हैं। देव-रूपी इन्द्रियों को प्रकाशित करनेवाले स्थान ही देवों के क्रीड़ा-स्थल हैं। इनका मूल मस्तिष्क और मेरुदंड की रचना में पाया जाता है। मस्तिष्क से चेतनाओं का आना-जाना एक प्रकार की क्रीडा या केलि है। इन्हीं केलियों के स्थानों को 'कैलास' कहा है—'केलीनां समूहः कैलम्, तेन आस्यते अत्र इति कैलासः।' केवल 'कैलास' ही क्या, अलकापुरी, वैभ्राज या चैत्ररथवन, नन्दन-कानन, सब मस्तिष्क के ही विभिन्न प्रदेशों की संज्ञाएँ हैं। नन्दन-वन-विहार, चैत्ररथ की सैर, कैलास-परिक्रमा आदि पौराणिक कथाओं का आध्यात्मिक अर्थ यही है।"

'कैलास' और 'सोम-लता' के सम्बन्ध में उसी लेख में विद्वद्वर लेखक ने लिखा है—

"कृष्णयजुर्वेद में शिव को 'अवततधन्वा पिनाकहस्तः' कहा है। 'अवततधन्वा' का अर्थ 'अधिज्य धनुष वाला' है—अर्थात् जिसके धनुष पर प्रत्यंचा आरोपित है। पुराणों में मस्तिष्क के जिन प्रदेशों को 'कैलास', गन्धमादन, मन्दराचल आदि कहा है उन्हीं को वेद में 'त्रिककुद्' और 'मूजवान्' पर्वत कहा है। × × मूजवान् पर्वत 'सोम' का उत्पत्ति-स्थान माना गया है। × × × 'सोम' मस्तिष्क में बहनेवाला और उसके स्वास्थ्य का परम कारण वह अत्यन्त पवित्र रस है जिससे समस्त केन्द्रीय नाडी-जाल का सिंचन होता है। × × × सोम का ही दूसरा नाम अमृत है। × × × सोमपान और अमृतपान एक ही तत्त्व को बताते हैं। पूर्ण समाधि, मन पर पूर्ण अधिकार, विचारों का पूर्ण संयम, योग की परम सिद्धि ही सोमपान का फल है। शरीर के वीर्य को शरीर में ही ओज-रूप से प्रतिष्ठापित कर लेना सोमपान है। वेद में जिसे सोमपान कहा है, पुराणों में उसी को अमृतपान कहा है। शिव सदा अमृत का पान करते हैं। अमृत और सोम का परम स्थान चन्द्रमा उनके मस्तक पर है। शिव स्वयं सोम हैं—उमा के सहित होने से सोम (स+उमा) बनते हैं।"

'मानस-सरोवर' पर भी उसी लेख में लिखा है—

"वेद और उपनिषदों में मस्तिष्क को कलस, कुम्भ या द्रोण कहा है। इस कलस में अमृत भरा हुआ है। × × × इसमें से निरन्तर अमृत का क्षरण होता रहता है। इस झरते

हुए अमृतबिन्दु को योगी पी जाते हैं, विषयी इसका दुरुपयोग करते हैं। × × × जो अमृत देवों को अमरत्व देता है, वही असुरों के हाथ में सुरा-रूप हो जाता है। × × × सुरा विष-रूप है, उससे आयु का क्षय होता है। 'मानस-सरोवर' देवताओं का स्थान है, उसमें अमृत भरा हुआ है। वहाँ समस्त चक्र या कमल अमृत के प्रताप से खिले रहते हैं। हंस-रूप योगी उनका उपभोग करते हैं।"

पुनः 'कैलास' के सम्बन्ध में—

"शिवजी को वृषभध्वज और वृषकेतु भी कहते हैं। उनकी सबसे बड़ी विजय वृष को अपने वश में करके उस पर सवारी करना है। प्रायः जगत् के सब पुरुषों पर वृष सवारी करता है, पर शिवजी वृष पर सवारी करते हैं। × × × यह वृष 'काम' है। वर्षणशील रेत को 'वृष' कहा है। × × × सूत्र-रूप से यह जान लेना पर्य्याप्त है कि काम की ही एक संज्ञा 'वृष' है। × × इस ( वृष ) वाहन पर चढ़ने के लिए शिव को 'कुम्भोदर' सिंह पर पैर रखना पड़ता है। कवि ( कालिदास ) ने कहा है— 'कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्। अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्।' ( रघुवंश, २—३५ )—अर्थात् 'कैलास' के समान शुभ्र वर्णवाले वृष पर जब शिवजी चढ़ना चाहते हैं, तब वे मेरी पीठ पर पैर रखकर सहारा लेते हैं, ऐसा मैं कुम्भोदर नाम शिव का अनुचर हूँ। यहाँ यह बताया गया है कि वृष पर सवारी करने अर्थात् उसे अपने

अधिकार में लाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य पहले उदर या रसनेन्द्रिय पर संयम प्राप्त कर ले। स्वाद को वश में करना ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिए अनिवार्य है। जिह्वा पर अंकुश रखे बिना ब्रह्मचर्य की सफलता असम्भव है।"

ऊपर के उद्धरणों से पाठकों को 'कैलास' और 'मानस-सरोवर' के आध्यात्मिक रूपों का कुछ परिचय प्राप्त हो गया— उनके नैसर्गिक रूपों का परिचय पहले ही दिया जा चुका है। 'कैलास' और 'मानस-सरोवर' के महत्त्व और गौरव को प्रकट करने के लिए इतना ही पर्याप्त है। आशा है, इतने ही से हिन्दी-पाठकों की जिज्ञासा बहुत दूर तक शान्त हो जायगी।

# परिशिष्ट

## [ २ ]

## 'कैलास'-'मानस' के विदेशी यात्री

अँगरेजी भाषा में 'ट्रान्स हिमालया' नामक एक विशाल ग्रन्थ है। उसके तीन बड़े-बड़े खंड हैं, प्रत्येक खंड में लगभग साढ़े चार सौ पृष्ठ हैं, सैकड़ों चित्र हैं, मानचित्र भी अनेक हैं। भारत के भूतपूर्व वायसराय 'लार्ड मिंटो' को समर्पित है। सुप्रसिद्ध मैकमिलन कम्पनी ने उसे सन् १९१० ई० में प्रकाशित किया था। लेखक उसका 'स्वेन हेडिन' है। वह स्वेडन देश ( उत्तरी योरप ) का निवासी था। प्रथम खंड की भूमिका में वह लिखता है—

"दुर्भाग्यवश यह सम्पूर्ण विशाल ग्रन्थ मुझे एक सौ सात दिनों ( लगभग साढ़े तीन महीने ) में लिखना पड़ा। बहुत-सा समय चित्रों और मानचित्रों के तैयार करने-कराने में लग गया। विदेशी प्रकाशकों से पत्रव्यवहार करने में भी काफी समय लगा। मेरी हस्तलिखित कापी साफ नहीं थी। मेरे पिता ने साफ प्रेस-कापी तैयार कर दी। मेरी माता ने बहुत-सी अशुद्धियों का संशोधन कर दिया।"

उक्त भूमिका उसने सन् १६०६ में, स्वेडन की राजधानी स्टॉकहम में, लिखी थी। स्वेडन के बादशाह की अनुमति से वह मध्य-एशिया की सैर करने आया था। लार्ड कर्जन (बड़े लाट) और लार्ड किचनर (जंगी लाट) को भी उसने भूमिका में धन्यवाद दिया है, जिनसे उसे अपनी हिमालय-यात्रा में सहायता मिली थी।

उसके यात्रा-दल में सैंतीस हिन्दुस्तानी और एशियाई थे, जिन्हें स्वेडन के बादशाह की ओर से सोने और चाँदी के पदक मिले थे। हिमालय-भ्रमण के लिए उसने काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से, सन् १६०६ के जून में, प्रस्थान किया था। काश्मीर-नरेश सर प्रतापसिंह ने उसकी बड़ी सहायता की थी। उस समय महाराज के सेक्रेटरी थे पंडित दयाकिशन कौल। कौल महाशय ने ही उसके यात्रा-दल का सारा प्रबंध किया था।

'स्वेन हेडिन' पहले-पहल सन् १८६५ ई० में एशियाई रेगिस्तानों की सैर कर चुका था। सन् १६०६ में वह मध्य-एशिया के पहाड़ी प्रान्तों की सैर करने चला। हिमालय-जगत् में भ्रमण करने के लिए वह बहुत दिनों से उत्सुक था। तिब्बत में वह खूब घूमा। पर यहाँ केवल उसकी 'कैलास-मानस'-यात्रा का ही संक्षिप्त विवरण दिया जायगा, जिससे मेरी इस पुस्तक का सम्बन्ध है।

'स्वेन हेडिन' ने अपने ग्रन्थ के तीसरे खंड के अठारहवें अध्याय में एक अँगरेज यात्री का पता दिया है, जो सबसे पहले

मानस-सरोवर के तट पर पहुँचा था। सम्भवतः उस अँगरेज यात्री से पहले कोई विदेशी वहाँ नहीं गया था। उस अँगरेज का नाम था 'विलियम मूरक्राफ्ट्'। वह ईस्ट-इंडिया कम्पनी के निमंत्रण पर सन् १८०८ ई० में कलकत्ता पहुँचा था और सन् १८१२ ई० में मानस-सरोवर के तट पर गया था। वह पशु-चिकित्सा-विज्ञान में बड़ा कुशल था। उसके साथ 'कैप्टेन हियरसे' नामक अँगरेज भी मानस-सरोवर की यात्रा में गया था—एक 'हरवल्लभ' नामक बूढ़ा पंडित भी था, जो सन् १७९६ ई० में भी कैलास और मानस-सरोवर की यात्रा कर चुका था।

'हरवल्लभ' से पहले 'पुराणगिरि' नामक एक ब्राह्मण ने सन् १७७३ ई० से पहले ही 'कैलास-मानस' की तीर्थयात्रा की थी। वह ब्राह्मण सन् १७७९ में तिब्बत के 'ताशी लामा' के साथ चीन की राजधानी 'पेकिन' तक गया था। भारत के वायसराय 'वारन हेस्टिंग्स' ( १७७४–१७८५ ) द्वारा नियुक्त होकर वह दो-दो बार 'भूटान' और 'तिब्बत' में, जासूस और दुभाषिया के रूप में, गया था। 'बोगल' और 'टर्नर' नामक अँगरेज यात्रियों का वह पथप्रदर्शक था।

उपर्युक्त 'मूरक्राफ्ट' की कब्र बुखारा ( तुर्किस्तान ) में है, जहाँ वह सन् १८२५ में मरा था। सन् १८३२ में 'लफटिनेंट बर्न्स' उसकी कब्र देखने गया था। 'मूरक्राफ्ट' ने मानस-सरोवर आदि का जो सुन्दर वर्णन लिखा है, वह अँगरेजी साहित्य में एक उत्तम वस्तु है।

स्वेन हेडिन ने भी 'मानस'-वर्णन में बड़ा कमाल किया है। उसने अपने विराट् ग्रंथ के तीसरे खंड के सत्रहवें अध्याय में मानस-सरोवर के पौराणिक और ऐतिहासिक तथा आधुनिक विवरणों का प्रशंसनीय संग्रह किया है। उन विवरणों का यदि यहाँ संक्षेप में भी उल्लेख किया जाय, तो अनावश्यक ग्रन्थ-विस्तार होगा। आवश्यकता इस बात की है कि 'स्वेन-हेडिन' के वृहत् ग्रंथ में से 'कैलास' और 'मानस' के वर्णन छाँटकर निकाल लिये जायँ और उनका सुन्दर अनुवाद हिन्दी-पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जाय। यहाँ मैं 'स्वेन हेडिन' के वर्णनों के केवल पाँच अवतरण पाठकों के सामने रखता हूँ—

[ १ ]

"अहा! मानस-सरोवर का सुनील-हरिताभ जल-तल कितना सुन्दर है! कैसा मनोमुग्धकर दृश्य है! सुख-स्वातंत्र्य की कैसी अपूर्व अनुभूति है! वस्तुतः जीवन का आनन्द यहीं उपलब्ध होता है। इच्छा होती है, नील गभीर 'मानस' की पवित्र तरंगों में जल-विहार करें। संसार-भर की झीलों में सबसे बढ़कर पवित्र और परम प्रसिद्ध मानस-सरोवर ही है। असंख्य धर्मप्राण हिन्दुओं की तीर्थयात्रा का अन्तिम लक्ष्य यही है। अत्यन्त प्राचीन धार्मिक स्तोत्रों और गीतों में इसका गुणगान किया गया है। गंगा की तरह इसके स्वच्छ जल में भी हिन्दुओं का फूल ( चिताभस्म ) डाला जाता है। लामाओं की दृष्टि में भी यह उतना ही पवित्र है। इसका चित्ताकर्षक सौन्दर्य मानव-

मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालनेवाला है। इसकी अद्भुत सौन्दर्यराशि और इसके अनुपम दृश्य को देखकर हमलोगों के नेत्रों में आनन्द के आँसू उमड़ आये। इसके दो तरफ संसार के दो परम सुन्दर और परम प्रसिद्ध विशाल पर्वत—कैलास और गरुड-मान्धाता—अपना हिम-मंडित शुभ्र मस्तक उन्नत किये खड़े हैं। इसकी मनोहारिणी शोभा ने मेरे मन पर ऐसा जादू डाल दिया कि इसके तट से हटने की इच्छा न होती थी। जी चाहता था कि इसकी तरंगों की मीठी तान पर कान लगाये ही रहूँ।"

[ २ ]

"जब मैंने अपने तिब्बती पथप्रदर्शकों ( गाइडों ) से कहा कि मानस-सरोवर के उस पार तक नाव ले चलो, तब वे बोले कि ऐसा होना असम्भव है; क्योंकि यह देवताओं का निवास-स्थान है और जो कोई ऐसा दुस्साहस करता है वह सर्वनाश को प्राप्त हो जाता है। एक तिब्बती ने तो यहाँ तक कहा कि पश्चिमी तट तक किसी प्रकार पहुँचा नहीं जा सकता, देवता लोग नाव की गति को बाँध देंगे—हमलोग समझेंगे कि नाव चल रही है; पर वह एक ही स्थान पर जमी रह जायगी और अन्त में क्रुद्ध देवता उसे डुबाकर ही छोड़ेंगे।"

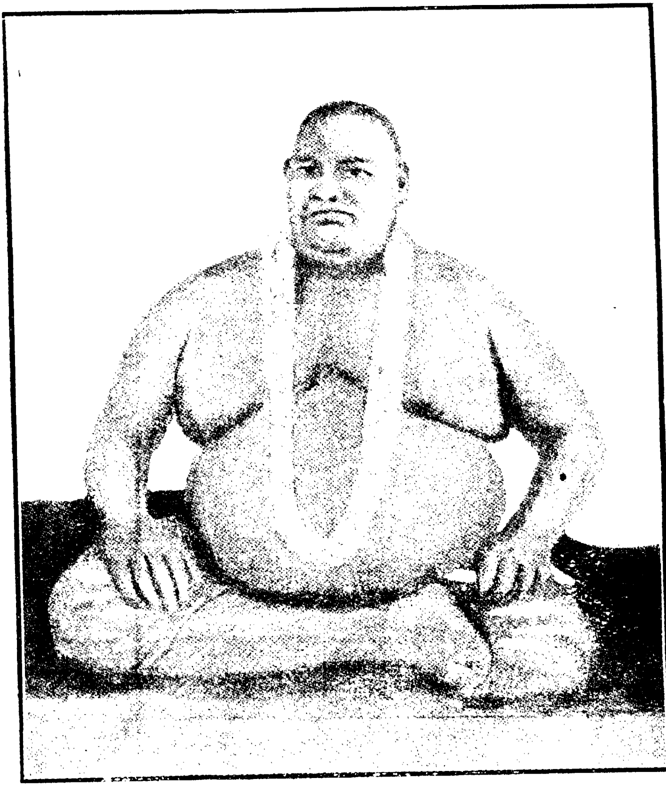
"किन्तु मैंने इन बातों पर ध्यान न देकर नाव खोलने की आज्ञा दी। बीस मिनट तक नाव खेने के बाद रुककर मैं जल की गहराई नापने लगा। क्रमशः १३५, १४१, १६४, १८१,

१८६, २१२, २३०, २४०, २५६, २६४ फीट की गहराई मिलती गई। शाम को किश्ती खुली थी। अब रात हो गई। रजनी रानी अपने केश-पाश में हीरक-हार गूँथकर पवित्र सरोवर की शोभा निरख रही थी। मैं एशिया में बहुत घूमा, लेकिन आज की रात का यह जल-विहार मेरी यात्रा भर में सबसे बढ़कर सुखद और निराला था। शताब्दियों से हजारों यात्री इस सरोवर की यात्रा करते आ रहे हैं, लेकिन सूर्यास्त और सूर्योदय का जैसा अविरल दृश्य हमलोगों ने यहाँ देखा वैसा शायद ही किसी ने देखा हो। आकाश में हँसता हुआ चन्द्रमा सरोवर के तरंगित वक्षःस्थल पर बिखरकर मुक्ता-कणों में परिवर्त्तित हो जाता था। धीरे-धीरे, तूल-राशि-से बिखरे हुए बादल, हलका गुलाबी रंग धारण कर, सरोवर के चिकने वक्ष पर अपनी छाया डालने लगे। सरोवर के स्वच्छ जल और उगती हुई उषा की सुहावनी सुगन्ध से हवा में मस्ती भरने लगी। देखते-देखते पर्वत-शिखर पर सूर्योदय की सुनहली आभा झलकने लगी। रजत-शुभ्र शिखर पर तरल स्वर्ण-प्रभा की वह अनोखी छटा देखते ही बनती थी। प्रति क्षण सप्तरंगी इन्द्रधनुष की छवि छिटक रही थी। जब पर्वत-शिखर से उतरकर सूर्य की दमकती हुई किरणें स्फटिक-स्वच्छ सरोवर के हृदय-तल पर चंचलता से नृत्य करने लगीं तब तो उस सुनहले देश की कान्ति ही कुछ और हो गई। उस स्वर्गीय चित्र को मनुष्य की लेखनी नहीं अंकित कर सकती।"

[ २ ]

"प्रभात के पदार्पण के साथ ही हंस जग पड़े। आनन्द से पंख फुलाकर, कलरव द्वारा उल्लास प्रकट कर, इधर-से-उधर जल-केलि करने लगे। दर्पण के सदृश निर्मल जल में पर्वतों का प्रतिबिम्ब झलमलाने लगा—जब आकाश स्वच्छ रहता तब यह प्रतिबिम्ब नीला दीख पड़ता और जब बादल घिर आते तब यह हरा नजर आता था! संसार का कोई कलाविद् चित्र-कार इससे बढ़कर चितचोर और भड़कीले दृश्य की कल्पना नहीं कर सकता। सरोवर-तटस्थ मठों के साधु-सन्यासी झरनों का जल छोड़कर मानस-सर का ही अत्यन्त मधुर विमल सलिल पीते हैं, जो वास्तव में स्फटिक के समान स्वच्छ और सुगन्धित तथा स्वादिष्ट है। मैं अपने दल के साथ लगातार साढ़े सोलह घंटे तक सरोवर के अन्दर किश्ती पर सैर करता रहा। जब मैं कैलास के पद-प्रान्त में बने हुए मठ के अन्दर रहनेवाले तिब्बती साधु-सन्यासियों से मिलने गया, तब वे कहने लगे कि आपमें कोई अदृश्य शक्ति है, इसी लिए आप मानस-सरोवर में सकुशल नाव चला सके और देवताओं के दंड से बच गये। उन लोगों की यह भी धारणा हुई कि 'ताशी लामा' का मित्र होने के कारण और उनके आशीर्वाद देने से मुझे किसी विघ्न या भय का सामना न करना पड़ा। जो हो, मैंने तीर्थयात्री हिन्दुओं और बौद्ध लामाओं की समान श्रद्धा-भक्ति मानस-सरोवर

# कैलास-दर्शन



एक एकान्तवासी जीवन्मुक्त सिद्ध योगी

साढ़े सात सौ वर्ष के महात्मा 'परमहंसदेवजी', जो हिमालय में— कैलास-पर्वत के पास मानस-सरोवर के तट पर— निवास करते हैं। आपका उपदेश है कि ब्रह्मचर्य, व्यायाम, प्राणायाम, अहिंसा, उपवास-व्रत, सहिष्णुता और दया को जो अपनावेगा वह सदा स्वस्थ रहकर दीर्घजीवी होगा। [ चित्र 'अमृतबाजारपत्रिका' से ]



'कैलास' और 'मानस-सरोवर' का एक प्रसिद्ध विदेशी यात्री

स्वेडन-निवासी 'स्वेन हेडिन'

[ 'ट्रान्स हिमालया' नामक विशाल अँगरेजी ग्रन्थ का लेखक ]

में देखी। हिन्दू तीर्थयात्री शीशियों और गंगाजलियों में मानस-सरोवर का जल भरकर घर ले जा रहे थे। काशी के गंगा-तट पर जैसे पूजा-पाठ और जप-ध्यान करते हुए हिन्दू दीख पड़ते हैं, वैसे ही मानस-सरोवर के तट पर भी दीख पड़े।"

[ ४ ]

"यद्यपि मेरे दल पर मानस-निवासी देवताओं ने दंड-प्रहार नहीं किया तथापि एक अत्यन्त भयंकर विपत्ति तो आ ही गई। हमलोग भीषण तूफान के संकट में पड़ गये! आँधी और वर्षा के साथ घनघोर अन्धकार ने भी आक्रमण किया। मानस-सर की उमड़ती हुई तरंगों पर किश्ती उछलने लगी। नाव के सिवा और कुछ भी दीख न पड़ता था। बड़ी प्रचंड फुफकार-सी सुन पड़ती थी। कुछ ही देर में उत्तर-पूर्व की ओर अतिशय भयानक गर्जन सुन पड़ा। मालूम हुआ कि कान बहरे हो गये। संभवतः यह महाशक्तिशाली तूफान का ही गर्जन था। वर्षा के साथ बर्फ भी गिर रही थी। बादलों में बिजली का कड़कना और दिल दहलानेवाले गम्भीर गर्जन का उस पहाड़ी प्रान्त में गूँजकर तड़प उठना तो और भी हड़कम्प डाल रहा था। कुछ ही क्षण में किश्ती के अन्दर ओले भर गये। किश्ती से टकराने वाली लहरें गरज-गरजकर चपेट रही थीं। तीन-तीन कमीजों के ऊपर चढ़े हुए चमड़े के कोट को छेदकर बर्फीला पानी मेरे चमड़े में चुभने लगा। हमलोग हताश हो गये। यही जान पड़ा कि आज तूफान और तरंगों की चपेट में ही इतिश्री है। किन्तु

देखते-ही-देखते वह बर्फीला तूफान बड़े सर्राटे से मानस-सरोवर में उथल-पुथल मचाकर निकल गया। हमलोग भी समझ गये कि यह मानस-निवासी देवताओं के क्रोध की आँधी हमें केवल चेतावनी देने के लिए आई थी !"

[ ५ ]

"चार्ल्स ए० शेरिङ्ग ने तिब्बत के सम्बन्ध में जो एक पुस्तक लिखी है, उसमें उन्होंने उल्लेख किया है कि सन् १८५५ ई० में बरेली के कमिश्नर 'मिस्टर ड्रमंड' ने भी नौका द्वारा मानस-सरोवर की सैर की थी; पर इसका पता नहीं लगता कि उन्होंने मानस-सरोवर का कोई नक्शा तैयार किया था—उसकी गहराई की नाप की थी या नहीं।"

× × × ×

यहाँ, ऊपर की पाँतियों में, 'स्वेन हेडिन' के वर्णनों की सिर्फ बानगी दिखाई गई है। खेद है कि ग्रंथ-विस्तार-भय से उसके वर्णनों की मूल भाषा यहाँ न दी जा सकी। मूल का सौन्दर्य, अँगरेजीदाँ लोग, 'ट्रान्स हिमालया' के दूसरे खंड के चौवालीसवें और पैंतालीसवें अध्याय में, देख लेंगे।

अँगरेजी में तिब्बत पर मैं ( लेखक ) ने तीन पुस्तकें पढ़ी हैं। एक तो स्वेन हेडिन की पुस्तक, जिसका वर्णन ऊपर हो ही चुका। दूसरी पुस्तक मिस्टर शेरिङ्ग की है, जो अलमोड़ा के डिप्टी-कमिश्नर थे। तीसरी पुस्तक ए० एच० सॅवेज लैंडर की है। अँगरेजी में और भी कई पुस्तकें हैं।

अँगरेजी साहित्य अगाध है। उसमें हिमालय आदि पर कितनी ही पुस्तकें हैं। हिन्दी में 'हिमालय' पर एक भी पुस्तक आज तक देखने में नहीं आई! राष्ट्रभाषा के गर्व से फूलनेवाले लोग हिमालय को भारत-माता का मुकुट मानते हैं; पर कभी हिमालय के हृदय में पैठकर छान-बीन करने का साहस नहीं दिखाते। राष्ट्रीय दृष्टि से भी हिमालय का बड़ा महत्त्व है।

विदेशी यात्री आते हैं और संसार-भर के पर्वतों के सिर-ताज 'हिमालय' की शोभा-सम्पत्ति का निरीक्षण करके अपने साहित्य के लिए अमूल्य सामग्री संकलित कर ले जाते हैं; पर हम भारतवासी अपने ही घर के अद्वितीय रत्न को नहीं परखते! कैसा दयनीय दुर्भाग्य है!

× × × ×

'तिब्बत में तीन वर्ष' नामक पुस्तक हिन्दी में आज से दस-ग्यारह वर्ष पहले ही निकल चुकी है। वह प्रसिद्ध जापानी यात्री 'इकाई कावागुची' की पुस्तक का अनुवाद है। हिन्दी में इस विषय की मौलिक पुस्तक महापंडित श्रीराहुल सांकृत्यायनजी की है, जो सब दृष्टियों से प्रामाणिक और विश्वसनीय है। हिमालय, तिब्बत, कैलास, मानस-सरोवर, नैपाल आदि के विषय में मौलिक और प्रामाणिक पुस्तकें हिन्दी में तभी निकल सकती हैं जब स्वामी सत्यदेव परिव्राजक और श्रीराहुलजी के समान विद्वान्, साहसी, कष्टसहिष्णु, ब्रह्मचारी तथा त्यागी हिन्दी-लेखक अपने साहित्य के लिए

कठोर परिश्रम के साथ-साथ आत्मोत्सर्ग तक करने को तैयार हों। अब इधर कुछ ऐसे लेखक दृष्टि-पथ पर आ रहे हैं।

उपर्युक्त 'इकाई कावागुची' नामक जापानी यात्री ने भी 'कैलास' और 'मानस-सरोवर' के वर्णन मे कुछ उल्लेखनीय बातें लिखी हैं। उन्हीं बातों का उल्लेख करके मैं अब पुस्तक समाप्त करता हूँ। इकाई कावागुची ने सन् १८६६ ई० में तिब्बत की यात्रा की थी। वह लिखता है—

प्रायः साढ़े तीन मील चलने पर हमें गङ्गा का उद्गम-स्थान मिला। रात उसी नदी के किनारे बिताकर प्रातःकाल हमलोग आगे बढ़े। उस दिन केवल नौ मील चले। यहाँ से उत्तर-पश्चिम की ओर 'कैलास'-पर्वत की चोटी दिखाई पड़ी। मैंने हिमालय की तुषारावृत बहुत-सी चोटियाँ देखी थीं; परन्तु 'कैलास' को देखकर भक्ति का स्रोत हृदय में उमड़ पड़ा। उसे मैंने एक सौ आठ बार प्रणाम किया। × × × दस मील चलकर ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से 'मनरी'-शृंग दिखाई देता था। यह सदा बर्फ से ढँका रहता है। इसकी ऊँचाई २५६०० फीट है। 'मनरी' का अपूर्व शोभा-गाम्भीर्य देखने में जिस समय मैं मुग्ध हो रहा था, उसी समय वहाँ के दृश्य में एक जादू का-सा परिवर्त्तन हो गया। बिजली चमकने लगी, बादल गरजने लगे और बड़े वेग से ओले गिरने लगे, मानों समूचे पहाड़ को हिला देंगे। चारों ओर घोर अन्धकार फैल गया। प्रायः घंटे भर यह दशा रही। इसके बाद आकाश

एकदम निर्मल हो गया। सूर्य निकल आये। तूफान का कहीं चिन्ह तक न रहा। × × × हमलोग बहुत ही ढालू पहाड़ पर चढ़ने लगे। तेरह मील पर 'मानस-सरोवर' झील दिखलाई पड़ी। यह झील अठपहलू है। इसका पानी बहुत ही स्वच्छ है। इसके उत्तर-पश्चिम में 'कैलास' मानों पहरा दे रहा है। 'मानस-सरोवर' संसार-भर में मीठे पानी की सबसे बड़ी झील समझी जाती है। यह झील समुद्र की सतह से १५५०० फीट ऊपर है। तिब्बत में इसका नाम 'माप-हाम-यूमत्सी' है। इसके विषय में एक कथा है कि "इस झील के बीच में एक वृक्ष है जिसके फल से सब दुःख दूर हो जाते हैं और उस फल की खोज में देवता और मनुष्य दोनों ही रहते हैं।" एक और भी कथा है कि "इस झील से चार नदियाँ निकली हैं—एक मोर के मुख से, एक साँड़ के मुख से, एक घोड़े के मुख से और एक सिंह के मुख से। ये चारों नदियाँ भारतवर्ष में गई हैं। इन नदियों में से एक की चाँदी की, दूसरी की सोने की, तीसरी की हीरे की और चौथी की लाल की रेतें हैं।" पर इस कथा का कोई आधार नहीं है; क्योंकि वास्तव में एक भी नदी मानस-सरोवर से नहीं निकली है! बल्कि उनके उद्गम-स्थान आसपास के पर्वत हैं। × × × मेरे साथियों ने कहा कि सतलज नदी मानस-सरोवर से निकली है। मैंने उत्तर दिया—मानस-सरोवर चारों ओर से पहाड़ों से घिरा है, पानी बाहर जाने का एक भी द्वार नहीं है। इसका उन्होंने उत्तर दिया—यह नदी पहाड़ों के नीचे

से अदृश्य भाव से निकली है। वहाँ के लोगों का ऐसा ही विश्वास है। जहाँ तक मैंने देखा, सतलज नदी की सतह मानस-सरोवर से कहीं ऊँची है। × × × आगे बढ़ने पर 'कैलास'-पर्वत का वह भाग मिला जिसको कुबेर का महल बताते हैं। इसका नाम सुनते ही मुझे कालिदास के 'मेघदूत' की याद आ गई। यह चोटी प्रायः २२३००० फीट ऊँची है। यहाँ की हवा बहुत हल्की थी और ठंढक भी बहुत थी। पहाड़ के नीचे एक तालाब था जिसके बारे में कहा जाता था कि कुबेर इसमें नहाते थे; इस समय उसके ऊपर बर्फ जमी हुई थी।

× × × ×

'कावागुची' का 'कैलास-मानस'-वर्णन अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित करके मैं उनसे फिर यही निवेदन करना चाहता हूँ कि एक बार वे अवश्य ही कैलास-मानस-यात्रा का अलौकिक आनन्द प्राप्त करके नरजन्म सफल करें और अपनी यात्रा का सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र वर्णन हिन्दी-साहित्य-भांडार में संचित करके पुण्य तथा यश के भागी बनें।

श्रीकैलासपतये नमः

पंडित विनोदशंकर व्यास-लिखित

नव निराली कहानियाँ १॥)

अनूठा प्रेमपूर्ण सामाजिक उपन्यास ॥)

# अशान्त

पुस्तक-भंडार द्वारा प्रकाशित

श्रीजयशंकर 'प्रसाद'-लिखित

अभिनव साहित्यिक नाटक



मूल्य सजिल्द १॥)

पुस्तक-भंडार द्वारा प्रकाशित

## कुछ आदरणीय सम्मतियों के नमूने

**१—विद्यापति की पदावली**—इसकी उपयोगिता के विषय में हम केवल यही कह सकते हैं कि हमारे एक मित्र, जो हिन्दी-साहित्य से सर्वथा विरक्त थे, इसकी पाद-टिप्पणियों की सहायता से 'विद्यापति' का अध्ययन करके ही, हिन्दी-साहित्य के उपासक बन गये। —( 'माधुरी', लखनऊ )

**२—निर्माल्य**—ऐसी कविताएँ हिन्दी-जगत् में युग-परिवर्त्तन करने में सहायक हो सकती हैं। 'निर्माल्य' की गिनती उन पुस्तकों में होगी, जिनपर खड़ी बोली कुछ अभिमान कर सकती है। —( 'सम्मेलन-पत्रिका', प्रयाग )

**३—देहाती दुनिया**—दिल को लोटपोट कर देनेवाली है। आँखें चाहती हैं, हमेशा उलट-पलटकर देखते ही रहें। गौर कर देखने से ठेठ देहात का साक्षात् चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। —( 'देश', पटना )

**४—बिहार का साहित्य**—The gentlemen concerned are well-known in Hindi literary world and their addresses, both in form and matter, have certainly more than ephemeral interest attached to them. We would particularly commend to the readers the remarkable address of Raja Saheb Surajpura. It is all poetry in prose. —( 'Searchlight', Patna )

**५—नवीन वीन**—लालाजी की कविता में एक बड़ा गुण यह है कि वह चित्त को तुरंत खींच लेती है। जहाँ आपने उर्दू-बहर का प्रयोग किया है, वहाँ तो कमाल ही कर दिया है! बड़ी ललित और मधुर कविताएँ हैं। उपमाओं की फौज खड़ी कर दी है। —( दैनिक 'आज', काशी )

☞ **"बालक"**—बालकों के लिए जितने पत्र निकल रहे हैं, 'बालक' उन सबसे अच्छा है। —(औपन्यासिक-सम्राट् 'प्रेमचन्द')

## हमारी साहित्यिक पुस्तकों की विशेषताएँ

१—पुस्तकों का संशोधन और सम्पादन बड़े परिश्रम से किया जाता है। छपाई की शुद्धता और स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बाहरी सजावट का भी काफी खयाल रक्खा जाता है।

२—पुस्तकों के चुनाव में बड़ी सावधानता और विचारशीलता से काम लिया जाता है। पाठकों की सुरुचि और मनोरंजन का ध्यान रखते हुए केवल सर्वोपयोगी पुस्तकें ही चुनकर प्रकाशित की जाती हैं।

३—पुस्तकों का मूल्य लागत-मात्र के अनुसार रक्खा जाता है। इसी लिए सुसम्पादित, सुमुद्रित, सुसज्जित और सर्वप्रशंसित होने पर भी हमारी पुस्तकें सर्वसाधारण के लिए सुलभ हैं।

४—सभी पुस्तकों की भाषा की शुद्धि और भाव की उत्तमता पर खूब ध्यान दिया जाता है। कुरुचि-पूर्ण चित्रों और गंदी-भद्दी सजावटों को बिलकुल प्रश्रय नहीं दिया जाता। सभी पुस्तकें हिन्दी-संसार के सुप्रतिष्ठित एवं सुप्रसिद्ध लेखकों की लिखी हुई होती हैं। सभी पत्र-पत्रिकाएँ मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा करती हैं।

५—सभी पुस्तकों का चुनाव, संशोधन, सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन केवल साहित्यिक दृष्टि से ही किया जाता है, इसीलिए सभी पुस्तकों का अन्तरंग और बहिरंग सादगी और पवित्रता से ओतप्रोत रहता है।

**मैनेजर—पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय और पटना**

# महत्त्वपूर्ण सम्मतियाँ

हर्ष का विषय है कि बिहार का यह 'पुस्तक-भंडार' हिन्दी में दिन-दिन अच्छी-अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन का प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। 'पुस्तक-भंडार' से कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। प्रकाशकों ने विषय के साथ-साथ पुस्तकों के आकार को भी बालोपयोगी बनाने की सफल चेष्टा की है। —'प्रताप', कानपुर

बिहार-प्रान्त में हिन्दी-पुस्तकों को खूब अच्छे ढंग से प्रकाशित करनेवाली संस्था यही एक है। —'सरस्वती', प्रयाग

We are glad to find that the enterprising Hindi publishers of **Laheriasarai**, The **Pustak-Bhandar**, are going ahead both in matter of enriching the *Juvenile Literature* as well in producing standard works for serious study. Their endeavours are eminently praiseworthy. the printing and get-up of the books are all that can be desired.—'SEARCHLIGHT', PATNA.

पुस्तक की छपाई-सफाई, आकार-प्रकार, रूप-रंग इतना अच्छा, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण है कि उसके लिए प्रकाशक को जितना प्रोत्साहित किया जाय, उन्हें जितनी बधाई दी जाय, थोड़ी है। छपाई-सफाई आदि के सम्बन्ध में प्रकाशकजी ने जो ढंग अपनाया है, वह सर्वथा स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। —'त्यागभूमि', अजमेर

मासिक पत्र-पत्रिकाओं में बच्चों के पढ़ने लायक सर्वाङ्ग-सुन्दर 'बालक' है। —( बिहार-रत्न ) राजेन्द्रप्रसाद

बालक-सम्बन्धी जो पत्र निकलते हैं, उनमें 'बालक' सर्वश्रेष्ठ है। —(म० म०) गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

अन्य प्रमुख प्रकाशकों की पुस्तकें भी हमसे मँगाइये—

**पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय और पटना**

* ऐसे चिह्न वाली पुस्तकें फिर नई छप रही हैं।

# विशेष ध्यान देने योग्य बातें

[१] अब तक 'भंडार' द्वारा जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनकी उत्तमता और उपयोगिता को हिन्दी-प्रधान प्रान्तों की सरकारों और राष्ट्रभाषा के विद्वानों तथा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं के सुयोग्य सम्पादकों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है।

[२] हमारी पुस्तकों का एक पूरा सेट मँगा लेने से एक अत्यन्त उपयोगी घरू लाइब्रेरी बन सकती है, जो आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष को परिवार में प्रेम और शान्ति से दिन बिताने का सुयोग देगी।

[३] योरप, अमेरिका और जापान की उन्नति का मूल कारण यह है कि वहाँ घर-घर में एक अच्छी लाइब्रेरी है। वहाँ के लोग मानव-जीवन के लिए अन्न-जल और वस्त्र ही की भाँति पुस्तकों की भी आवश्यकता समझते हैं।

[४] इस संक्षिप्त सूचीपत्र में केवल पुस्तकों का मूल्य ही दिया गया है। डाकव्यय आदि उससे अलग होगा।

[५] आठ आने से कम मूल्य की कोई पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जाती। इससे कम मूल्य की पुस्तक मँगाने के लिए रजिस्ट्री-डाकखर्च जोड़कर उतने दाम का टिकट ही भेजें।

[६] वी० पी० मँगाकर लौटा देने से हमारी बड़ी हानि होती है। हिन्दी के नाते इस संस्था की हानि आप ही की हानि है। १०) से बेशी का आर्डर हो तो ५) पेशगी भेजें।

[७] आर्डर के पत्र में अपना नाम, गाँव, डाकघर, रेलवे स्टेशन, जिला अथवा नगर और मुहल्ला साफ-साफ अँगरेजी या देवनागरी में लिखना चाहिये।

[८] जो सज्जन आठ आना पेशगी फीस जमा करके हमारी साहित्यिक पुस्तक-मालाओं के स्थायी ग्राहक बन जायँगे, वे हमारी साहित्यिक पुस्तकें पौने मूल्य में पा सकेंगे।

---

विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय